जार्ज पंचम की नाक

कमलेश्वर



HILLSBOROUGH

जॉर्ज पंचम की नाक

मूल्य : साठ रुपये (**Rs. 60.00**)

संस्करण : 2007 © कमलेश्वर
ISBN : 978-81-7028-268-6
GEORGE PANCHAM KI NAAK (Short Stories)
by Kamleshwar

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006
www.rajpalsons.com

जॉर्ज पंचम की नाक

कमलेश्वर

राजपाल

SOMERSET COUNTY LIBRARY
BRIDGEWATER, NJ 08807

ये कहानियां

इस संग्रह में संकलित कुछ कहानियों की भी कहानियां हैं। कुछेक कहानियां जब पत्रिकाओं में छपीं तो छोटी-बड़ी मुश्किलें सामने आईं, और तब मुझे पता चला कि कोई भी सत्ता महज़ कहानियों से नहीं घबराती, वह कथ्य से घबराती है। कहानी का कथ्य ही उनका सत्य होता है। मेरे मित्र कथाकार ओमप्रकाश श्रीवास्तव ने एक जगह लिखा है कि, "यदि किसी का दिमाग खराब करना हो तो सच बात कह दो।" और यही हुआ जब मैंने 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी लिखी।

इस संग्रह की कहानियां उस समय की हैं जब मैं इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली आया था और दिल्ली आते ही एक रचनात्मक शून्य में फंस गया था, क्योंकि तब तक की लिखी कहानियों की भाषा, गति और फार्म आदि मेरे काम नहीं आ रहे थे। सच्चाइयां इतनी उलझी हुई लग रहीं थीं कि उनका छोर समझ नहीं आ रहा था, ऐसे में विडंबनाओं पर ही दृष्टि टिकती है। अब मुझे लगता है कि अपने समय और परिवेश को समझने में प्राथमिक दृष्टि व्यंग्य की ही हो सकती है। इस संग्रह की कहानियां मेरे लिए (लेखक के रूप में) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके सहारे ही मैंने पहली बार महानगर की उलझी हुई ज़िंदगी के छोर सुलझाए थे। जिन सच्चाइयों के सामने मैं खड़ा था, उनके प्रति दृष्टिकोण तय हुआ था। मुझे मालूम है कि इसमें संकलित कुछ कहानियां बचकानी हैं, कहानियों के रूप में भी वे समर्थ नहीं हैं, पर इन्हीं कहानियों में परिवर्तन की एक प्रक्रिया भी है, जो मेरे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

दिल्ली आकर मेरा असंतोष और आक्रोश और बढ़ गया था, मुझे लग रहा था कि जिस आस्था और ममता से मैं 'राजा निरबंसिया' की दुनिया में रह रहा था, वह व्यर्थ हो गई थी। राजनीति सचमुच क्या होती है, भ्रष्ट राजतंत्र और नौकरशाही सत्ता द्वारा लगाए गए अप्रत्यक्ष प्रतिबंध और उनमें घुटते, संघर्ष करते व्यक्ति की क्या हालत है—यह सब दिल्ली में ही पहली बार बहुत गहराई से दिखाई दिया। यह भी लगा कि इस तंत्र पर कहीं से भी कोई प्रहार नहीं किया जा सकता।

इसी घुटन से गुज़र रहा था कि मैंने 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी लिखी। कहानी के रचनाकाल में मैं टेलीविज़न में सरकारी नौकर था। इस कहानी के छपते ही बवंडर खड़ा हो गया, फाइलें दौड़ने लगीं और पुलिस इंक्वायरी शुरू हो गई। अंततः मुझे लड़ते-लड़ते नौकरी छोड़नी पड़ी। पर इस सरकारी कहानी का अंत तब हुआ जब मेरे नौकरी छोड़ने के डेढ़ बरस बाद मेरी जगह नियुक्त किए गए व्यक्ति से यह पूछा गया कि 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी उसने क्यों लिखी?

इसी तरह जब 'ब्रांच लाइन का सफ़र' कहानी छपकर मेरे कस्बे में पहुंची तो चांडाल साधुओं का एक गिरोह मेरी अक्ल ठीक करने के लिए तैयार हो गया। कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि ये घटनाएं कोई बड़ी बात नहीं हैं और न ये कहानियाँ किसी को महिमा-मंडित करती हैं, पर इतना ज़रूर है कि इन कहानियों ने मुझे लेखक की संलग्नता का एक पाठ ज़रूर पढ़ाया है···यानी इन्होंने मुझे एक सक्रिय दृष्टि दी है और बेहतर कहानियों की पीठिका भी तैयार की है। इसीलिए मैं इन कहानियों का शुक्रगुज़ार हूं।

—कमलेश्वर

क्रम

जार्ज पंचम की नाक

यह बात उस समय की है जब इंग्लैंड की रानी ऐलिज़ाबेथ द्वितीय मय अपने पति के हिन्दुस्तान पधारने वाली थीं। अखबारों में उनके चर्चे हो रहे थे। रोज़ लन्दन के अखबारों से ख़बरें आ रही थीं कि शाही दौरे के लिए कैसी-कैसी तैयारियां हो रही हैं···रानी ऐलिज़ाबेथ का दर्ज़ी परेशान था कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और नेपाल के दौरे पर रानी कब, क्या पहनेंगी? उनका सेक्रेटरी और शायद जासूस भी उनके पहले ही इस महाद्वीप का तूफानी दौरा करनेवाला था···आखिर कोई मज़ाक तो था नहीं।···ज़माना चूंकि नया था, फौज-फाटे के साथ निकलने के दिन बीत चुके थे इसलिए फोटोग्राफरों की फौज तैयार हो रही थी···

इंग्लैंड के अखबारों की कतरनें हिन्दुस्तानी अखबारों में दूसरे दिन चिपकी नज़र आती थीं···कि रानी ने एक ऐसा हल्के नीले रंग का सूट बनवाया है, जिसका रेशमी कपड़ा हिन्दुस्तान से मंगवाया गया है···कि करीब 400 पौंड खर्चा उस सूट पर आया है।

रानी ऐलिज़ाबेथ की जन्मपत्री भी छपी। प्रिन्स फिलिप के कारनामे छपे, और तो और उनके नौकरों, बावर्चियों, खानसामों, अंगरक्षकों की पूरी-की-पूरी जीवनियां देखने में आईं! शाही महल में रहने और पलनेवाले कुत्तों तक की तस्वीरें अख़बारों में छप गईं····

बड़ी धूम थी। बड़ा शोर-शराबा था। शंख इंग्लैंड में बज रहा था, गूंज हिन्दुस्तान में आ रही थी।

इन अख़बारों से हिन्दुस्तान में सनसनी फैल रही थी···राजधानी में तहलका मचा हुआ था। जो रानी 5000 रुपये का रेशमी सूट पहनकर पालम के हवाई अड्डे पर उतरेगी उसके लिए कुछ तो होना ही चाहिए। कुछ क्या, बहुत

कुछ होना चाहिए। जिसके बावर्ची पहले महायुद्ध में जान हथेली पर लेकर लड़ चुके हैं···उसकी शान-शौकत के क्या कहने···और वही रानी दिल्ली आ रही है···

नई दिल्ली ने अपनी तरफ देखा और बेसाख़्ता मुंह से निकल गया—वह आएं हमारे घर, ख़ुदा की रहमत···कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं। और देखते-देखते नई दिल्ली का कायापलट होने लगा।

और करिश्मा तो यह था कि किसी ने किसी से नहीं कहा, किसी ने किसी को नहीं देखा—पर सड़कें जवान हो गईं, बुढ़ापे की धूल साफ हो गई। इमारतों ने नाज़नीनों की तरह शृंगार किया···

लेकिन एक बड़ी मुश्किल पेश थी···वह थी जार्ज पंचम की नाक!···नई दिल्ली में सब कुछ था, सब कुछ होता जा रहा था, सब कुछ हो जाने की उम्मीद थी, पर जार्ज पंचम की नाक की बड़ी मुसीबत थी! नई दिल्ली में सब कुछ था···सिर्फ नाक नहीं थी!

इस नाक की भी एक लम्बी दास्तान है। इस नाक के लिए बड़े तहलके मचे थे किसी वक्त! आन्दोलन हुए थे। राजनीतिक पार्टियों ने प्रस्ताव पास किए थे। चंदा जमा किया था। कुछ नेताओं ने भाषण भी दिए थे। गर्मागर्म बहसें भी हुईं थीं। अखबारों के पन्ने रंग गए थे। बहस इस बात पर थी कि जार्ज पंचम की नाक रहने दी जाए या हटा दी जाए! और जैसा कि हर राजनीतिक आन्दोलन में होता है, कुछ पक्ष में थे कुछ विपक्ष में और ज्यादातर लोग ख़ामोश थे। ख़ामोश रहनेवालों की ताकत दोनों तरफ थी···

यह आन्दोलन चल रहा था। जार्ज पंचम की नाक के लिए हथियारबंद पहरेदार तैनात कर दिए गए थे···क्या मजाल कि कोई उनकी नाक तक पहुंच जाए! हिन्दुस्तान में जगह-जगह ऐसी नाकें खड़ी थीं और जिन तक लोगों के हाथ पहुंच गए उन्हें शानो-शौकत के साथ उतारकर अजायबघरों में पहुंचा दिया गया। शाही लाटों की नाकों के लिए गुरिल्ला युद्ध होता रहा···

उसी ज़माने में यह हादसा हुआ—इंडिया गेट के सामने वाली जार्ज पंचम की लाट की नाक एकाएक गायब हो गई! हथियारबंद पहरेदार अपनी जगह तैनात रहे। गश्त लगाते रहे···और लाट की नाक चली गई।

रानी आए और नाक न हो!···एकाएक यह परेशानी बढ़ी। बड़ी सरगर्मी शुरू हुई। देश के ख़ैरख़्वाहों की एक मीटिंग बुलाई गई और मसला पेश किया गया कि क्या किया जाय?···वहां सभी एकमत से इस बात पर सहमत थे कि अगर यह नाक नहीं है, तो हमारी भी नाक नहीं रह जाएगी···

उच्च स्तर पर मशवरे हुए। दिमाग खरोंचे गए और यह तय किया गया कि हर हालत में इस नाक का होना बहुत ज़रूरी है। यह तय होते ही एक

मूर्तिकार को हुक्म दिया गया कि वह फौरन दिल्ली में हाज़िर हो।

मूर्तिकार यों तो कलाकार था, पर ज़रा पैसे से लाचार था। आते ही उसने हुक्कामों के चेहरे देखे⋯अजीब परेशानी थी उन चेहरों पर; कुछ लटके हुए थे, कुछ उदास थे और कुछ बदहवास थे। उनकी हालत देखकर लाचार कलाकार की आंखों में आंसू आ गए⋯तभी एक आवाज़ सुनाई दी—"मूर्तिकार! जार्ज पंचम की नाक लगनी है!"

मूर्तिकार ने सुना और जवाब दिया—"नाक लग जाएगी। पर मुझे यह मालूम होना चाहिए कि यह लाट कब और कहां बनी थी? इस लाट के लिए पत्थर कहां से लाया गया था?"

सब हुक्कामों ने एक-दूसरे की तरफ ताका⋯एक की नज़र ने दूसरे से कहा कि यह बताना ज़िम्मेदारी तुम्हारी है! खैर मसला हल हुआ। एक क्लर्क को फोन किया गया और इस बात की पूरी छानबीन करने का काम सुपुर्द कर दिया गया!⋯पुरातत्त्व विभाग की फाइलों के पेट चीरे गए, पर कुछ भी पता नहीं चला। क्लर्क ने लौटकर कमेटी के सामने कांपते हुए बयान किया—"सर! मेरी ख़ता माफ हो, फाइलें सब कुछ हज़म कर चुकी हैं!"

हुक्कामों के चेहरों पर उदासी के बादल छा गए। एक ख़ास कमेटी बनाई गई और उसके ज़िम्मे यह काम दे दिया गया कि जैसे भी हो यह काम होना है और इस नाक का दारोमदार आप पर है। आख़िर मूर्तिकार को फिर बुलाया गया⋯उसने मसला हल कर दिया। वह बोला—"पत्थर की किस्म का ठीक पता नहीं चलता, तो परेशान मत होइए⋯मैं हिन्दुस्तान के हर पहाड़ पर जाऊंगा और ऐसा ही पत्थर खोजकर लाऊंगा!" कमेटी के सदस्यों की जान-में-जान आई। सभापति ने चलते-चलते गर्व से कहा—"ऐसी क्या चीज़ है जो अपने हिन्दुस्तान में मिलती नहीं। हर चीज़ इस देश के गर्भ में छिपी है⋯ज़रूरत खोज करने की है⋯खोज करने के लिए मेहनत करनी होगी, इस मेहनत का फल हमें मिलेगा⋯आने वाला ज़माना ख़ुशहाल होगा।"

वह छोटा-सा भाषण फौरन अख़बारों में छप गया।

मूर्तिकार हिन्दुस्तान के पहाड़ी प्रदेशों और पत्थरों की खानों के दौरे पर निकल पड़े।⋯कुछ दिन बाद वह हताश लौटे, उनके चेहरे पर लानत बरस रही थी, उन्होंने सिर लटकाकर ख़बर दी—"हिन्दुस्तान का चप्पा-चप्पा खोज डाला, पर इस किस्म का पत्थर कहीं नहीं मिला। यह पत्थर विदेशी है!"

सभापति ने तैश में आकर कहा—"लानत है आपकी अक्ल पर! विदेशों की सारी चीज़ हम अपना चुके हैं⋯दिल-दिमाग, तौर-तरीके और रहन-सहन⋯जब हिन्दुस्तान में बाल डांस तक मिल जाता है तो पत्थर क्यों नहीं मिल सकता!"

मूर्तिकार चुप खड़ा था। सहसा उसकी आंखों में चमक आ गई। उसने कहा—"एक बात मैं कहना चाहूंगा, लेकिन इस शर्त पर कि यह बात अखबारवालों तक न पहुंचे…"

सभापति की आंखों में भी चमक आई। चपरासी को हुक्म हुआ और कमरे के सब दरवाज़े बंद कर दिए गए। तब मूर्तिकार ने कहा—"देश में अपने नेताओं की मूर्तियां भी हैं…अगर इजाज़त हो…अगर आप लोग ठीक समझें, तो मेरा मतलब है, तो…जिसकी नाक इस लाट पर ठीक बैठे, उसे उतार लाया जाय…"

सबने सबकी तरफ देखा। सबकी आंखों में एक क्षण की बदहवासी के बाद खुशी तैरने लगी। सभापति ने धीमे से कहा—"लेकिन बड़ी होशियारी से!"

और मूर्तिकार फिर देश-दौरे पर निकल पड़ा। जार्ज पंचम की खोई हुई नाक का नाप उसके पास था। दिल्ली से वह बम्बई पहुंचा…दादाभाई नौरोजी, गोखले, तिलक, शिवाजी, कावस जी जहांगीर—सबकी नाकें उसने टटोलीं, नापीं और गुजरात की ओर भागा—गांधीजी, सरदार पटेल, विट्ठलभाई पटेल, महादेव देसाई की मूर्तियों को परखा और बंगाल की ओर चला—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ, सुभाषचन्द्र बोस, राजा राममोहन राय आदि को भी देखा, नाप-जोख की और बिहार की तरफ चला। बिहार होता हुआ उत्तर प्रदेश की ओर आया…चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल, मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय की लाटों के पास गया…घबराहट में मद्रास भी पहुंचा, सत्यमूर्ति को भी देखा, और मैसूर, केरल आदि सभी प्रदेशों का दौरा करता हुआ पंजाब पहुंचा—लाला लाजपतराय और भगतसिंह की लाटों से भी सामना हुआ। आख़िर दिल्ली पहुंचा और अपनी मुश्किल बयान की—"पूरे हिन्दुस्तान की मूर्तियों की परिक्रमा कर आया। सबकी नाकों का नाप लिया—पर जार्ज पंचम की इस नाक से सब बड़ी निकलीं!…"

सुनकर सब हताश हो गए और झुंझलाने लगे। मूर्तिकार ने ढाढ़स बंधाते हुए आगे कहा, "सुना था कि बिहार सेक्रेटेरियट के सामने सन् ब्यालीस में शहीद होनेवाले तीन बच्चों की मूर्तियां स्थापित हैं…शायद बच्चों की नाक ही फिट बैठ जाए, यह सोचकर वहां भी पहुंचा…पर…इन तीनों की नाकें भी इससे कहीं बड़ी बैठती हैं। अब बताइए, मैं क्या करूं?"

…राजधानी में सब तैयारियां थीं। जार्ज पंचम की लाट को मल-मलकर नहलाया गया था। रोगन लगाया गया था। सब कुछ था, सिर्फ नाक नहीं थी!

बात फिर बड़े हुक्कामों तक पहुंची। बड़ी खलबली मची—अगर जार्ज पंचम के नाक न लग पाई, तो फिर रानी का स्वागत करने का मतलब? यह तो अपनी नाक कटानेवाली बात हुई।

लेकिन मूर्तिकार पैसे से लाचार था⋯यानी हार माननेवाला कलाकार नहीं था। एक हैरतअंगेज़ ख़्याल उसके दिमाग में कौंधा और उसने पहली शर्त दुहराई। जिस कमरे में कमेटी बैठी हुई थी, उसके दरवाज़े फिर बंद हुए और मूर्तिकार ने अपनी नई योजना पेश की—"चूंकि नाक लगना एकदम ज़रूरी है, इसलिए मेरी राय है कि चालीस करोड़ में से कोई एक ज़िंदा नाक काटकर लगा दी जाए⋯"

बात के साथ ही सन्नाटा छा गया। कुछ मिनटों की ख़ामोशी के बाद सभापति ने सबकी ओर देखा। सबको परेशान देखकर मूर्तिकार कुछ अचकचाया और धीरे-से बोला—"आप लोग क्यों घबराते हैं। यह काम मेरे ऊपर छोड़ दीजिए⋯नाक चुनना मेरा काम है⋯आपकी सिर्फ इजाज़त चाहिए!"

कानाफूसी हुई और मूर्तिकार को इजाज़त दे दी गई।

अखबारों में सिर्फ इतना छपा कि नाक का मसला हल हो गया है और राजपथ पर इण्डिया गेट के पास वाली जार्ज पंचम की लाट के नाक लग रही है।

नाक लगने से पहले फिर हथियारबंद पहरेदारों की तैनाती हुई। मूर्ति के आस-पास का तालाब सुखाकर साफ किया गया। उसकी खाद निकाली गई। और ताज़ा पानी डाला गया, ताकि जो ज़िन्दा नाक लगाई जाने वाली थी वह सूखने न पाए। इस बात की खबर औरों को नहीं थी। यह सब तैयारियां भीतर-भीतर चल रही थीं। रानी के आने का दिन नज़दीक आता जा रहा था। मूर्तिकार खुद अपने बताए हल से परेशान था। ज़िन्दा नाक लाने के लिए उसने कमेटीवालों से कुछ और मदद मांगी। वह उसे दी गई। लेकिन इस हिदायत के साथ कि एक ख़ास दिन हर हालत में नाक लग जाएगी।

और वह दिन आया।

जार्ज पंचम के नाक लग गई।

सब अखबारों ने ख़बरें छापीं कि जार्ज पंचम के ज़िन्दा नाक लगाई गई है⋯यानी ऐसी नाक जो कतई पत्थर की नहीं लगती।

लेकिन उस दिन के अखबारों में एक बात गौर करने की थी। उस दिन देश में कहीं भी किसी उद्घाटन की ख़बर नहीं थी। किसी ने कोई फ़ीता नहीं काटा था। कोई सार्वजनिक सभा नहीं हुई थी। कहीं भी किसी का अभिनंदन नहीं हुआ था, कोई मानपत्र भेंट करने की नौबत नहीं आई थी। किसी हवाई अड्डे या स्टेशन पर स्वागत-समारोह नहीं हुआ था। किसी का ताज़ा चित्र नहीं छपा था।

सब अखबार खाली थे।

पता नहीं ऐसा क्यों हुआ था?

नाक तो सिर्फ एक चाहिए थी और वह भी बुत के लिए।

स्मारक

"और तब तुम मेरी लाश को कब्र से निकालकर तमगे पिन्हाओगे। मुझे वहां भी आराम से सोने नहीं दोगे। तुमने मुझे ज़िंदगी-भर परेशान किया। मैं अपने बच्चों के पेट की ख़ातिर एक-एक टुकड़े के लिए मारा-मारा फिरता रहा। जब मैंने सच्ची बात कही तब तुमने मुझे जेल के सीकचों के भीतर ढकेल दिया। मुझ पर मुकदमे चलाए और मेरा जीना मुश्किल कर दिया। और मेरी मौत की खबर पाकर तुम तकरीरें करोगे... घड़ियाल के आंसू बहाओगे। और मेरी यादगारें खड़ी करने की बातें करोगे... लेकिन मैं तुम्हें जानता हूं... तुम मेरे चैन से सोए हुए दिल में बेइज़्ज़ती का एक ख़ंजर और मारोगे..."

ये उस महान लेखक की किताब की भूमिका के अन्तिम वाक्य थे, जिन्हें सलीम साहब ने अभी-अभी डबडबायी हुई आंखों से पढ़कर सुनाया था। सब लोगों के दिल भर आए थे, पलकें झुकीं और गर्दन लटकी हुई थीं। उसके ये वाक्य कमरे की बंधी हुई फ़िज़ा में ठहरे हुए धुएं की तरह लटक रहे थे और लोगों के अभी तक चमकते हुए चेहरे ऐसे धूमिल पड़ गए, जैसे किसी ने रोशनी का रुख़ बदल दिया हो। कई मिनटों का सन्नाटा छाया रहा।

अगर नौकर ने ऐन इसी वक्त पान-सिगरेट की ट्रे न हाज़िर कर दी होती, तो सभी ऊबते हुए, बुत की तरह बैठे रहते। लोगों ने बड़ी शांति से मातमी ढंग से पान खा लिए या सिगरेटें सुलगा लीं और तब अध्यक्ष महोदय ने कहा, "अब मैं चन्द्रभानजी से प्रार्थना करूंगा कि वे दो शब्द कहें। चन्द्रभानजी का यह सौभाग्य रहा है कि वे लगातार तीन बरस तक उनके साथ रहे हैं और आपने बहुत नज़दीक से उन्हें जाना-पहचाना है... चन्द्रभानजी..."

चन्द्रभानजी ने शुरू किया, "सबसे पहले मैं उस महान आत्मा, उस महान साहित्यिक को अपना श्रद्धापूर्ण प्रणाम अर्पित करता हूं!" इतना कहकर वे

एकाएक चुप हो गए, उनके चेहरे पर दर्द की लकीरें परछाईं की तरह कांप रही थीं, एक क्षण जैसे चन्द्रभानजी ने उस दिवंगत आत्मा का स्मरण किया हो, फिर बोलना शुरू किया, "यह मेरा सौभाग्य था कि मैं उनके साथ एक लम्बी अवधि तक रहा और उन्हें हर तरह से देखने का मुझे मौका मिला। वे बड़े ही निश्छल और सरल व्यक्ति थे। उन्होंने मुसीबतों में कभी हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अपने दिन निपट निर्धनता में बिताए और आख़िरी समय तक वे अपनी मजबूरियों और परिस्थितियों से लड़ते रहे। जिस समय उनकी पत्नी का देहांत हुआ था, मैं वहीं था। फाकेमस्ती की यह हालत थी कि उस समय उनके पास कफन तक के लिए कपड़ा न था। उधार देनेवाले उनके नाम से कतराते थे। उनकी ज़िन्दगी में ऐसे दिन तक आए जब घर में चूल्हा तक नहीं जला। मैं उन्हें अपने घर खाने के लिए बुला-बुलाकर लाता था। खाना खाकर वे चुपचाप बैठे रहते थे। और एक भी शब्द कहे बगैर उठ जाया करते थे। मैंने उनका थोड़ा-बहुत कर्ज़ चुकाया तब बनिये की दुकान से उन्हें राशन मिलना शुरू हुआ। यह हमारी भाषा का दुर्भाग्य है कि उनके जैसे लाड़ले सपूत इस तरह भूखों मरें⋯उनकी बीवी के अन्तिम संस्कार के लिए जब हमने चंदे से रुपया जमा करना चाहा, तो उन्हें यह बर्दाश्त न हुआ। उसी दिन उन्होंने अपने एक उपन्यास की पांडुलिपि का कापीराइट बेचा और पत्नी का अंतिम संस्कार पूर्ण किया⋯मुझे वह दिन याद है⋯आज भी वे सब दृश्य मेरी आंखों के सामने नाच रहे हैं⋯मैं देख रहा हूं कि पत्नी की लाश घर में पड़ी है और वे 'कापीराइट एग्रीमेंट' पर हस्ताक्षर कर रहे हैं। ऐसा था उनका गर्व। मैं उनके गर्व को नमन करता हूं और अपने युग के महानतम साहित्यकार को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं⋯" कहते-कहते चन्द्रभानजी का गला भर आया था और वे आंखों पर रूमाल रखकर अपनी जगह बैठ गए।

जिस प्रकाशक की कोठी पर यह शोकसभा हो रही थी, वे स्वयं बहुत दबे-दबे निहायत निरीह सूरत बनाए चोबदार की तरह बैठे थे। अध्यक्ष की नज़र उन पर पड़ी, तो धीरे-से बोले, "बिहारी बाबू इधर निकल आइए⋯" और अपनी बगल में सोफे पर उनके लिए जगह खाली कर ली। बिहारी बाबू बड़े संकोच से कदम रखते हुए इस तरह आए जैसे पास वाले कमरे में सोई पड़ी उस महान आत्मा की नींद में ख़लल न पड़ जाए। उनके हाथ-पैर ढीले थे और वे रह-रहकर अपने सुनहरी कमानी वाले चश्मे को भौंहों से चिपकाकर सामने दीवार पर लगी उस फ़ोटो को ताक लेते थे, जिसमें उस महान लेखक के साथ उनका और उनके परिवार का चित्र था।

इस अन्तराल के बाद उस लेखक की मौत फिर भारी पड़ने लगी। जो

स्वच्छंदता अभी लोगों के व्यवहार में आ गई थी, वह गंभीरता में बदल गई और अध्यक्ष महोदय के इशारे से एक खद्दरधारी सज्जन उठकर खड़े हुए, "माननीय अध्यक्ष महोदय और साथियो, मैं इसे अपना अहोभाग्य मानता हूं कि मैं आज इस मीटिंग में उपस्थित हो सका। हम अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखक से अभी बहुत दूर नहीं गए हैं। वे आने वाले ज़माने में भी ज़िंदा रहेंगे और एक लाइट-हाउस की तरह हर भटकते हुए जहाज़ को रास्ता दिखाएंगे···मुझे वे दिन याद आते हैं जब यहां वे मेरे साथ कालिज में पढ़ते थे···" खद्दरधारी सज्जन ने इतने आत्मविश्वास से यह बात कही थी कि एक सज्जन प्रतिवाद कर बैठे, "उन्होंने शिक्षा नागपुर में पाई थी, यहां तो वे चार साल पहले आए थे।"

अध्यक्ष ने आंख के इशारे से प्रतिवाद को मना करना चाहा···खद्दरधारी सज्जन का मुंह तमतमा आया था, अपने मुंह के कोनों में बह आए पान को पोंछते हुए वे ज़रा सख़्ती से बोले, "यह निहायत अफ़सोस की बात है कि आज का पढ़ा-लिखा और साहित्यकार कहा जानेवाला आदमी एक बात के असली अर्थ को न समझ पाए!" और उन्होंने बड़ी सफाई से अपनी बात संभाली, "गोर्की ने 'माई यूनिवर्सिटीज़' लिखा है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे विश्वविद्यालयों में पढ़े थे। जीवन की पाठशालाएं सबसे बड़े कालेज हैं, जिनमें लेखक, कवि और नाटककार अपने अनुभव प्राप्त करता है। वह समाज का अग्रदूत है···।" खद्दरधारी सज्जन जोश में आ गए थे, सुपाड़ी का कोई टुकड़ा गले में अटककर ख़राश पैदा कर रहा था, मेज़ पर रखा गिलास उठाकर उन्होंने पानी पिया और बोलने लगे, "साहित्य एक साधना है, वह एक व्रत है और साहित्यकार एक महान साधक। साहित्य समाज का दर्पण होता है। जैसा समाज होगा, वैसा ही साहित्य होगा।" उनके हाथ हवा में दर्पण का नक्शा बनाते हुए उंगलियों से कोई बड़ा-सा बोल्ट खोलकर समाज का रूप सामने लाना चाहते थे, "हमारी परम्परा वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास और तुलसी की है। वे अपने युग के महानस्रष्टा थे···वे भविष्य-द्रष्टा थे। हमारे युग का दुर्भाग्य है कि हम अभी तक उन जैसा एक भी कवि पैदा नहीं कर सके। क्योंकि साहित्य सत्य, शिवम्, सुन्दरम् का मूलमंत्र हमें देता है। हमारे ऋषियों ने कहा है कि—जो शिव है, जो सुन्दर है, वही सत्य है। साहित्य से चूंकि यह भावना उठ गई है इसीलिए हम पिछड़ गए हैं। हम नहीं जानते कि रहस्यवाद क्या है? इसका कारण सिर्फ यह कि हमारा लेखक साधना से घबराता है। और जब तक लेखक अपने इस दायित्व को नहीं समझेगा समाज आगे नहीं बढ़ेगा। आज विदेशों में हमारे देश की जो इज़्ज़त है उसका मुख्य कारण है, हमारी शांतिप्रिय विदेश नीति। हमने

देश-विदेश में अपनी आवाज़ पहुंचायी है। सम्मान प्राप्त किया है⋯सत्य के आधार पर। यही सत्य साहित्य का आधार है। वह मानवतावाद हो, छायावाद हो, रहस्यवाद हो, इंक़िलाब हो, ज़िंदाबाद हो—सबमें सत्य समाया है। आज के लेखकों और कवियों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे इसी सत्य को पहले प्राप्त करें और देश के निर्माण में अपना हक अदा करें। बस मुझे इतना ही कहना है।" और वे उसी जोश में अपनी जगह पर बैठ गए।

शोकसभा में आए हुए सभी लोगों के चेहरे फ़क थे। अध्यक्ष भी थोड़ा सकते में आ गए थे। हवा एकदम बदल गई थी। अपने सूखे हुए होंठों को तर करते हुए अध्यक्ष ने कहा, "अभी हमारे नगर के तपस्वी नेता श्री जितेन्द्र जी ने आपके सामने अपने विचार रखे, हमें चाहिए कि हम उनका मनन करें। अपने महानतम लेखक के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी⋯अब मैं श्री बिहारी बाबू से करबद्ध प्रार्थना करूंगा कि वे संक्षेप में कुछ कहें।" कहकर अध्यक्ष ने अपनी घड़ी पर निगाह डाली।

बिहारी बाबू ने अपने कुरते की आस्तीनें हाथ तक सरका लीं और बड़े दुःखपूर्ण स्वर में बोले, "यह समय मेरे बोलने का नहीं है। साहित्य के दिग्गजों के सामने मुझे बोलते संकोच होता है। आज हम जिस महान आत्मा की शोकसभा के लिए यहां एकत्रित हुए हैं वे मेरे अपने थे। वे मेरे परिवार के अंग थे। आज मैं अकेला रह गया। यह हमारी भाषा के एक समर्थ महारथी का ही निधन नहीं, मेरी व्यक्तिगत क्षति है। आज से चार साल पहले वे मुझे एक साहित्य-सभा में मिले थे। तब वे बहुत कष्ट में थे। आपकी दया से मैं इस योग्य था कि उनकी कुछ सहायता कर सकूं। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे इस नगर में आकर इसे कृतार्थ करें। मैंने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे मेरे घर को भी पवित्र करें, पर वे लिखने के लिए एकांत चाहते थे। मैंने अपना एक मकान इसलिए खाली करवा दिया। मैंने उनसे किराया भी नहीं लिया। और यह मेरा सौभाग्य था कि वे आजन्म मेरी सेवा स्वीकार करते रहे, अपना स्नेह मुझे देते रहे और मेरे परिवार के अंग बन गए⋯मेरा दिल इतना भरा हुआ है कि इस अवसर पर कुछ भी कह सकना कठिन होता जा रहा है। मैंने उनकी समस्त पुस्तकों को एक जगह से प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया है, जिससे हमारे साहित्य के इस श्रेष्ठ स्रष्टा की समस्त कृतियां पाठकों को सुविधापूर्वक सुलभ हो सकें। हमने जनसाधारण को दृष्टि में रखकर उनकी कृतियों का मूल्य बहुत कम रखने की कोशिश की है, ताकि उनका प्रचार घर-घर हो सके और हमारे इस मेधावी लेखक के विचार चारों ओर फैल सकें⋯ ।

"मेरी यही कामना है कि वे जो कुछ जीवनपर्यन्त सोचते रहे वह

अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुंचे, जो कुछ उन्होंने लिखा वह हमारे साहित्य की अमर निधि है। मैं अपने मित्र, अपने अग्रज और सरस्वती के वरद् पुत्र को अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।"

उनके बैठते ही प्रसिद्ध कथाकार भुवनेशजी अपने-आप खड़े होकर बोलने लगे, "मित्रो! मैं भी आपसे दो-चार शब्द कहना चाहता हूं। मैं आपका अधिक समय न लेकर अपनी बात संक्षेप में कहूंगा···आज से तीस साल पहले की बात है, जब मैंने लिखना शुरू किया था और तब से निरन्तर साहित्य की सेवा करता आ रहा हूं। मैंने अब तक सरस्वती की साधना करके लगभग पचहत्तर से ऊपर गद्य-कृतियों का प्रणयन किया है, ख़ैर इसे छोड़िए···आज हम अपने साहित्य के सुप्रसिद्ध प्रगतिशील लेखक के निधन के उपलक्ष्य में यहां एकत्रित हुए हैं···वे मेरे साथी थे। हम लोगों ने लगभग एक साथ लिखना शुरू किया था। मैंने कुछ पहले शुरू किया था। मुझे अच्छी तरह याद है, जब वे अपनी पहली कहानी लिखकर मेरे पास लाए थे। उस समय तक मैं साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश कर चुका था, मेरी रचनाएं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आदरपूर्ण स्थान पाने लगी थीं। मैंने उनकी प्रथम कहानी की बड़ी कटु आलोचना की थी। हम फिर भी अच्छे मित्रों की तरह मिलते रहे और एक-दूसरे को अपनी रचनाएं सुनाते रहे।

"सच पूछिए, तो वे मेरे बड़े निकटतम मित्रों में थे। आज जो आप मुझे इस रूप में देख रहे हैं, यह दर्जा मुझे यों ही प्राप्त नहीं हुआ। मेरे पिताजी को कविता से शौक था और जब छोटी उम्र में मैंने पहली बार एक कविता लिखी, तो मेरे पिताजी ने मुझे बहुत बढ़ावा दिया और धीरे-धीरे वे मुझे अपने साथ छोटे-छोटे कवि-सम्मेलनों में ले जाने लगे। मेरे पाठकों के बीच यह झगड़ा है कि मैं मुख्यतः उपन्यासकार हूं, कवि हूं, कहानीकार हूं, या आलोचक। मित्रो, मैंने कविता से प्रारम्भ किया इसलिए मैं अपने को मुख्यतया कवि ही मानता हूं और उसी में मेरे दिल की भावनाएं अपने पंख पसारती हैं। बहरहाल इसे छोड़िए···आज हमारी भाषा एक ऐसे पद पर है कि हमें उसके सम्मान की रक्षा के लिए बड़े-बड़े काम करने हैं। वे अपना काम पूरा कर गए। यह एक बड़ी दिलचस्प बात है कि साहित्यिक समस्याओं और बातों को लेकर हममें-उनमें बहुत झगड़े हुए। ऐसे अवसरों पर अधिकतर वे हार जाते थे और अगली बार के लिए तैयार होकर आते थे। जब वे मेरे साथ थे तब मैंने अपना प्रथम उपन्यास 'भीगा आँचल लहराए रे' लिखा था···।" भुवनेशजी ने धीरे-से मुस्कराकर कहा, "कविता मेरे ऊपर कितनी हावी थी, इसका आभास आपको इस शीर्षक से हो गया होगा···इसके बाद मैं भावुकता और कल्पना की दुनिया से

निकल आया। मैंने यथार्थ की ठोस धरती पर चरण रखे...यह मेरा नया मोड़ था, इस काल में मैंने 'पत्थर की दीवार' और 'बुलबुले' नामक दो उपन्यास लिखे। इन्हें आलोचकों ने खूब सराहा। इसके बाद मैंने सत्रह कहानी-संग्रह और दस कविता-संग्रह तथा तीन खण्ड काव्य लिखे...यह सूची आप कहीं भी देख सकते हैं। अब मैं एक नयी किताब लिखने जा रहा हूं, जिसमें मेरे साहित्यिक साथियों के संस्मरण होंगे और मैं अपनी सच्ची श्रद्धांजलि उन्हें इसी रूप में प्रस्तुत करूंगा। अब मैं आपसे आज्ञा चाहता हूं...नमस्कार।"

और नमस्कार की नाटकीय मुद्रा में ही वे अपनी जगह बैठ गए। सामने बैठे हुए मूक श्रोताओं में एक साहब ढीली गद्दी की तरह बार-बार उचक रहे थे, खड़े होकर उन्होंने अध्यक्ष से एक मिनट का समय मांगा। आज्ञा मिलते ही उन्होंने कहा, "अभी हमारे कथाकार महोदय भुवनेशजी ने दिवंगत लेखक को प्रगतिशील के विशेषण से अभिहित किया, मैं इसका विरोध करता हूं। वे सच्चे मानवतावादी थे, मैंने उनके साहित्य की एक-एक पंक्ति पढ़ी है और मैं इस गम्भीर आक्षेप के लिए बहस करने को तैयार हूं। क्या आप अपनी स्थापना के सम्बन्ध में प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं?" और वे सज्जन ललकारने की मुद्रा में अपनी जगह पर खड़े रहे। अध्यक्ष ने घड़ी पर निगाह डालकर कहा, "भाइयो, हम लोग यहां साहित्यिक समस्याओं के समाधान के लिए नहीं वरन् एक शोकसभा के लिए एकत्रित हुए हैं, अतः इन बातों का निपटारा बाद में होता रहेगा। आप कृपा करके बैठ जाइए।" उन खड़े हुए सज्जन के बैठते ही अध्यक्ष ने कहा, "आपके सामने बहुत-से लोग बोल चुके हैं और अब कुछ भी कहने को शेष नहीं है। यह अवसर भी ऐसा नहीं, इसलिए मैं एक प्रस्ताव आपके सामने रखता हूं और एक मिनट मौन की प्रार्थना करूंगा और उसके बाद एक बात और सामने रखूंगा।"

एक मिनट मौन के बाद दुःखी साहित्यिकों का प्रस्ताव आया, उसकी स्वीकृति के बाद अध्यक्ष महोदय बोले, "हमारे यहां मृत को पूजने की परिपाटी है। पता नहीं, हम जीवित व्यक्तियों का सम्मान करना कब सीखेंगे। खैर यह समस्या आगे की है, इस समय मेरा प्रस्ताव है कि हम उनके लिए स्मारक की स्थापना करें—यहीं अपने नगर में, ताकि आने वाली पीढ़ियां जान सकें कि उन्होंने अपने अन्तिम दिन इसी पुण्य नगरी में बिताए थे। विदेशों में बड़ी ही स्वस्थ परम्परा है, वे अपने साहित्यिकों का सम्मान करना जानते हैं। हम भी इस ओर कदम बढ़ाएं, तो बंधुओ, मेरा प्रस्ताव है कि एक स्मारक ऐसा हो, जहां उनकी समस्त कृतियां, उन पर लिखी गई आलोचनाएं और उनकी पांडुलिपियां तथा उनका अन्य सामान आदि सुरक्षित रूप से रखा जा सके।"

"मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूं।" चन्द्रभानजी ने कहा, "मैं उनसे अन्तिम दिनों में मिला था, तब उनके चेहरे पर बड़ी घोर निराशा छाई थी और उन्होंने बड़े दर्द से मुझसे पूछा था—'क्यों चन्द्रभान! मैंने क्या ऐसा कुछ भी लिखा है जो मेरे मरने के बाद जीवित रह जाएगा?' मैंने उन्हें कभी इतना निराश नहीं देखा था। मेरी आंखें भर आईं थीं और मैंने उनसे कहा था—'भाई साहब आप हमारे साहित्य के युग-निर्माता हैं। यह ठीक है आपके जीवनकाल में हम लोग आपके लिए अभी तक कुछ नहीं कर पाए, पर आने वाली सन्तति आपका मूल्य पहचानेगी और आपको वह सम्मान देगी जो आज तक किसी को नहीं मिला। यह आपका प्राप्य है, जो अभी तक आपको नहीं मिला।' सुनते-सुनते उनकी आंखें भर आईं थीं। बिहारी बाबू उस समय वहीं थे, और बिहारी बाबू ने जिस समय उनसे कहा था—आपके स्मारक बनेंगे। नये लेखक यहां बैठ-बैठकर लिखना सीखेंगे। तो उनकी आंखों से आंसू ढरक पड़े थे, जैसे वे विश्वास न कर रहे हों। उन्हें अपनी महत्ता का कभी ज्ञान नहीं हुआ।

"उसी दिन बिहारी बाबू ने लौटते वक्त एक बात सुझायी थी। क्यों न इनका स्मारक हम लोग यहीं बनवाएं... आखिर हमारे नगर का अब उन पर पूरा अधिकार है। अपना यह मकान, जिसमें वे रह रहे हैं, मैं स्मारक निधि को दान दे दूंगा। बिहारी बाबू के उस दिन के ये शब्द मुझे याद हैं। और अब वह समय आ गया है, यद्यपि यह बड़ी दुःखद घटना है, पर जो दुनिया में आया है वह जाएगा भी। मैं बिहारी बाबू से अनुरोध करूंगा कि वे अपनी बात आज पूरी कर दें और हम लोग चंदा जमा करके अन्य आवश्यक कार्यवाही प्रारंभ करें।"

शोकसभा में सन्नाटा छाया हुआ था। आख़िर धीरे-धीरे 'स्मारक-निधि' की बात आगे बढ़ी और लोगों ने एक कमेटी बनाई। सबने अपना-अपना चंदा लिखवाया... किसी ने सौ, किसी ने दो सौ... जितना जिसके सामर्थ्य में था। एक मंत्री निर्वाचित हुए और शोकसभा भंग हो गई।

लोग अब तक ऊब चुके थे। चलने के लिए उतावले थे कि बिहारी बाबू ने अपनी सुनहरी कमानी वाला चश्मा भौंहों से चिपकाते हुए बड़ी विनम्रता से कहा, "आप लोग कुछ चाय-पान तो कर लें।"

बाहर बरामदे में मेज़ें लगी हुई थीं और उन पर भरपूर नाश्ता रखा हुआ था। बीच में गुलदस्ते सजे थे।

"यह शोकसभा है या चाय-पार्टी!" एक ने कहा तो बिहारी बाबू कातर होकर बोले, "आप आज इस घर पर पधारे हैं... ऐसा अवसर कहां मिलता है, इसे

स्वीकार कीजिए…एक प्याला ही सही।"

पर कुछ लोगों के पैर ठिठक रहे थे। तब तक खद्दरधारी जितेन्द्रजी ने कहा, "अब स्मारक कमेटी की ओर से सही।" एक ठहाका गूंजा और सब मुक्त होकर उधर बढ़ गए।

और तीन-चार दिन बाद उस स्मारक-निधि वाले मकान पर, जिसमें वह युग-निर्माता साहित्यकार मरा था, एक बोर्ड लगा हुआ था—'मकान किराये को ख़ाली है', जिसमें एक नहीं, चार लोहे की कीलें ख़ंजरों की तरह घुसी हुई थीं।

नाच

सभी को कहानी सुनने का इन्तज़ार था, क्योंकि कहानी पुरमज़ाक होगी, यह उम्मीद सभी को थी। तभी चाय का घूंट भरते हुए उसने शुरू किया, 'मान लीजिए कि उसका नाम है चन्द्रकांत और प्रेमिका का नाम है लिली!···तो भई हुआ यह कि 'लव एट फर्स्ट साइट' वाला एक्सीडेंट हो गया। चन्द्रकांत ने अपना नया-नया कारबार चलाया था, ज़िन्दगी में पहली बार चार पैसे उसके हाथ आए थे। पैसे हाथ में आते ही सबसे पहले उसने एक स्टैनो रखने की बात तय की, क्योंकि इससे व्यापार में इज़्ज़त बढ़ती है। बड़े ठाट-बाट से उसने अखबारों में विज्ञापन दिया और तीसरे ही रोज़ से किसी-न-किसी के आने की राह देखने लगा।'

'भई, असली कहानी शुरू करो!' एक न इसरार किया।

चाय का एक और घूंट लेते हुए वह आगे बोला, 'हां, तो आप इतना ज़रूर समझ गए होंगे कि यह कहानी एक स्टैनो के रखे जाने से शुरू होती है। अच्छा तो अब ठीक नब्ज़ पर हाथ रखता हूं···एक-एक धड़कन ज़रा संभालकर सुनिएगा।'

'मिस लिली की शादी तय हो चुकी थी··· ।' वह कह रहा था कि एक ने बात काट दी, 'किसके साथ—चन्द्रकांत के साथ?'

'नहीं, एक और आदमी के साथ! धीरज से सुनिए, क्योंकि यह कहानी एक निराश, पर आदर्शवादी प्रेमी की है। मिस लिली चन्द्रकांत से प्रेम करती थी, पर शादी दूसरे से कर रही थी, और चन्द्रकांत ने यह स्वीकार कर लिया था···

'तो हुआ यह कि चन्द्रकांत के यहां मिस लिली स्टैनो के रूप में काम करने लगी थी और चन्द्रकांत उसे देख-देखकर बहुत खुश होता था। यार-दोस्तों

को ख़ासतौर से दफ्तर में इसीलिए बुलाता था कि वे उसकी किस्मत से रश्क करें। ख़ैर, इस बात को छोड़िए''मिस लिली की शादी-वादी से भी हमें कुछ लेना-देना नहीं, वह होती है या नहीं होती है, इससे भी हमारा कुछ सरोकार नहीं, बहरहाल कहानी इस तरह चलती है''

'यह बात बड़े दिनों की है। मिस लिली के ससुरालवाले बड़ा दिन मनाने के लिए उसके घर आए हुए थे। कॉटेज छोटा था और जिस शान-शौकत तथा स्थिति का दिखावा वह करना चाहती थी, वह उस फटेहाल घर में मुमकिन नहीं था। इसलिए उसने बगल में एक बड़ा घर ख़ाली करवा लिया था। बड़े दिन के जश्न का इन्तज़ाम वहीं हुआ था। उस घर की सफाई-धुलाई की गई थी। कमरों में सारी सजावट कर दी गई थी। मिस लिली के वुडबी और ससुरालवाले उस निहायत सजे हुए घर में कुछ दिनों के लिए आबाद हो गए थे।

'बड़ा दिन आने वाला था। चन्द्रकांत ने सारे इन्तज़ाम का ज़िम्मा ले लिया था। एक कमरे में पीने-पिलाने और नाच का इन्तज़ाम था''उसके लकड़ी के फश पर सेलखड़ी पोती गई थी। उसके बगलवाले कमरे में क्रिसमस ट्री बनाया गया था। क्रिसमस ट्री के लिए डाल भिजवाई थी चन्द्रकांत ने। वह मिस लिली के मेहमानों की ख़ातिरतवाज़े में मशगूल था। एक नशा-सा था उस पर—मुहब्बत में शहीद हो जाने का। मेहमानों के घर की सजावट और साज़ोसामान का ऐसा चौकस बंदोबस्त किया था चन्द्रकांत ने कि लिली ने भी दांतों तले अंगुली काट ली थी''कमरों में क्रेप-पेपर की इन्द्रधनुषी पट्टियां लटक रही थीं। जगह-जगह कन्दीलें और गुब्बारे लटक रहे थे। रंग-बिरंगे फूलदान, मेंटिलपीस और एशट्रे पीने की छोटी मेज़ों पर सजे हुए थे। किराये के फर्नीचर पर कुशन और साटन के मेज़पोश थे और एक अलमारी में बोतलें बन्द थीं। बहरहाल बड़ा दिन आया—उसी शाम डांस का प्रोग्राम भी था। लिली और सब लोग पहले से ही वहां मौजूद थे। चन्द्रकांत को शामिल होने के लिए वक्त से आना था।''इतना सब कुछ चन्द्रकांत ने कर तो दिया था, पर जब भी वह लिली के बिछड़ने का ख़्याल करता, तो उसका दिल बैठने लगता। पर यह सब तो वह खुद ही कर रहा था''क्योंकि उसने लिली से आदर्शवादी प्रेम की झोंक में ख़ुद ही कहा था—'मुझे सिर्फ तुम्हारी खुशी चाहिए''और कुछ भी नहीं लिली'' ।'

'शाम हो रही थी। चन्द्रकांत अपने घर में बैठा रह-रहकर उतावला हो उठता था''सब लोग वहां उसका इन्तज़ार कर रहे होंगे! दिल बहुत घबराया हुआ और परेशान-सा था। किसी करवट चैन नहीं आ रहा था। एक बार मन करता कि न जाए, पर दूसरे ही क्षण लिली को देखने और उसके साथ कुछ

वक़्त गुज़ारने की बेचैनी हावी होने लगती।

'आखिर चन्द्रकांत ने लुंगी फेंककर पैंट चढ़ाई, कमीज़ पहनी और टाई बांधने के लिए जैसे ही वह आईने के सामने खड़ा हुआ, तो उमर के अहसास ने उसे ढीला कर दिया। उसके दिमाग में दोस्त की वह बात कौंधने लगी—'चन्द्रकांत, यह सब तमाशे उम्र के साथ फबते हैं, तुम किस मामले में फंस गए हो⋯।'

'पर चन्द्रकांत ने कहा था, 'यार प्रेम के मामले में उम्र आड़े नहीं आती⋯औरतें उम्र पर कभी नहीं जातीं! यह तो आग है मेरे भाई, जो लगाए न लगे और बुझाए न बुझे!'

'ग़ालिब के इस शेर से उसे बड़ी राहत मिली। अगर यह शेर न लिखा गया होता, तो शायद चन्द्रकांत ने कुछ और ही फैसला किया होता। आखिर उसने टाई बांधी और जूते पहने तो कीलें बज उठीं। जूते उतारकर उसने कीलों को अच्छी तरह ठोका ताकि वे नाच के वक्त शोर न करें और रूमाल में सेंट की बूंदें टपकाकर वह चल दिया।

लिली के घर की ओर जाते हुए तमाम बातें उसके दिमाग में आ रही थीं। जब मिस लिली पहली बार नौकरी के लिए उसके ऑफिस में आई थी। वह पर्देवाले कपड़े का स्कर्ट पहने थी। वैनिटी बैग का रंग उतरा हुआ था और सैंडिल की ऊंची एड़ी तरबूज़ के डंठल की तरह भीतर घुसी हुई थी। पुरानी सैंडिल पर नेकटाई ज़रूर बंधी हुई थी। तब उसके होंठों पर न लिपस्टिक की लाली थी और न चेहरे पर रूज़-पाउडर का लेप। कैमरे के स्टैंड की तरह लंबी-लंबी अंगुलियां थीं और बैसाखी की तरह की टांगें। पहली नज़र में तो चन्द्रकांत हताश हो गया था, पर मिस लिली की निगाहों में जो प्यार का सोता फूट रहा था उसे वह नज़रअंदाज़ नहीं कर पाया था⋯

और तब उसने मन-ही-मन कहा था—'यह लड़की मेरी ज़िन्दगी में आकर रहेगी⋯' और उस रात रह-रहकर उसकी वे प्यार-भरी आंखें उसे कचोटती रही थीं।

'दूसरे दिन से मिस लिली काम पर आने लगी थी। उसके बैठने का इन्तज़ाम उसने अपने कमरे में ही किया था। और पहले ही दिन चन्द्रकांत लिली की शोखी और चुस्ती का शिकार हो गया था। वह बड़ी फुर्ती से डिक्टेशन लेती और सही-सही टाइप करके सामने रख देती। अपनी थकी हुई अंगुलियों को आपस में फंसाकर खींचती और चन्द्रकांत की ओर देखते हुए धीरे-से मुस्करा देती।

'कुछ ही दिनों में चन्द्रकांत महसूस करने लगा था कि उसका डिक्टेशन

लेना इतना ज़रूरी नहीं था जितना कि उसका मुस्कराना। और जब भी लिली प्यार से मुस्कराती और अपनी थकी हुई अंगुलियों को चटख़ाती तो नज़र दबाकर चन्द्रकांत चाय का आर्डर प्लेस कर देता। खुद पीने से पहले लिली के सामने प्याला पेश करता।

'धीरे-धीरे मिस लिली पूरे ऑफिस की देखभाल करने लगी थी। उसने ऑफिस का हुलिया ही बदल दिया था। वह ख़ुद जाकर चन्द्रकांत के कमरे के लिए ऑफिस के पैसे से कारपेट लाई थी, उसकी मेज़ उसने बदलवाई थी, एक नया टेबिल-लैंप उसके लिए लाई थी, जिसे उसने खुद मेज़ पर लगाया था। साथ ही वह गुलदान लाई थी और वेस्टपेपर बास्केट भी मंगवाकर रख दी थी⋯ चन्द्रकांत के कमरे के लिए उसने पर्दों का रंग और डिज़ाइन पसंद किया था⋯ और जब उसने वे कीमती पर्दे लाकर कमरे में लगवा दिए थे तो चन्द्रकांत का दिल झूम उठा था। ऑफिस का पैसा तो काफी लग गया था, पर जो रौनक़ आई थी उसकी कल्पना तक चन्द्रकांत ने नहीं की थी। धीरे-धीरे ऑफिस की सभी चीज़ों में तब्दीली आ गई थी। सभी चीज़ें चमकने लगी थीं और इसी के साथ-साथ लिली के होंठों पर लाली आ गई थी। पैरों में नई जूती आ गई थी, रेशमी स्कर्ट और कमर के लिए बेल्ट आ गई थी। हुलिया कुछ इस कदर बदला था कि खुद चन्द्रकांत को कुरता-पैजामा पहनकर ऑफिस आते शरम लगती थी। धीरे-धीरे चन्द्रकांत का हुलिया भी तब्दील हुआ था⋯

'और फिर ऑफिस के बाद चन्द्रकांत ने लिली के साथ बाहर निकलना शुरू किया था। आखिर एक शाम चन्द्रकांत ने बड़ी हिम्मत की। पहली एकांत मुलाकात के लिए चन्द्रकांत ने लिली को एक होटल में चाय पीने की दावत दी थी। लिली मान गई थी, पर होटल में उसके साथ घुसते हुए चन्द्रकांत को पसीना आ गया था। जैसे-तैसे उसने अपने को संभाला था और वापस लौटते वक्त उसने लिली से कहा था, 'लिली डियर, मेरे साथ साड़ी पहनकर आया करो!'

'बात के पीछे छिपी भावना को लिली ने समझते हुए भी नासमझ बनने की कोशिश करते हुए कहा था—'क्यों?'

'अच्छी लगती है!' कहकर स्वयं अपनी चतुराई पर चन्द्रकांत को खुशी हुई थी। लिली ने धीरे-से कहा था—'हमारे पास साड़ियां हैं ही नहीं!'

'और दूसरे ही दिन चन्द्रकांत ने उपहार-स्वरूप साड़ियों का एक बंडल मिस लिली के घर भिजवा दिया था।

'उसी के दूसरे रोज़ चन्द्रकांत ने बड़े प्यार से उसे एक खत डिक्टेट करने के लिए बुलाया था। लिली साड़ी पहनकर आई थी और बड़ी शोख़ी से

डिक्टेशन लेती जा रही थी। चन्द्रकांत भी बीच-बीच में उसे देखता रह जाता और बोला हुआ वाक्य भूल-भूल जाता था। जैसे-तैसे ख़त खत्म हुआ और अंत में चन्द्रकांत ने ख़त पढ़कर सुनाने के लिए कहा था। लिली ने एक बार मुस्कराकर उसे देखा था और शार्टहैंड की कापी उसके सामने रखकर मुस्कराती हुई बाहर चली गई थी। चन्द्रकांत ने देखा, कापी में ख़त नहीं, प्यार के शोले धधक रहे थे।

'आई लव यू इंटैंसली! आई कांट लिव विद-आउट यू! आई सी यू इन माई ड्रीम्स!' और न जाने कितनी सुलगती हुई इबारतें उन पन्नों पर थीं।

'चन्द्रकांत ने उसी वक्त और सारे काम छोड़कर एक लंबा प्रेम-पत्र लिली के नाम लिखा और उसके नशे में डूबा रहा था। उस दिन से वह रोज़ एक प्रेमपत्र लिली के पर्स में डाल देता और हर सुबह उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता। ख़तों का जवाब उसे हर रोज़ मुस्कराहटों से मिलता रहा।'

'लेकिन उस पार्टी में क्या हुआ, जिसके लिए चन्द्रकांत तैयार होकर चला था?' एक ने पूछा।

'ओफ! बड़ा दर्दनाक मंज़र था वह!' उसने आगे सुनाना शुरू किया, 'जब चन्द्रकांत वहां पहुंचा, तो मिस लिली अपने होने वाले पति के साथ लॉन पर टहल रही थी! उसे यूं टहलता देखकर चन्द्रकांत का दिल बैठ गया। पर राहत उसे उन्हीं बातों से मिलती थी जो मिस लिली ने उससे कभी कही थीं—शादी के बाद हमारे रिलेशंस और भी अच्छे हो सकेंगे!—यह वाक्य ही उसे सहारा दे रहा था, पर मन में कहीं ख़लिश भी थी। आख़िर भग्न हृदय चन्द्रकांत बड़े दिन के नाच में शामिल हुआ। नाचना उसे आता नहीं था—लिली ने उसका साथ देते हुए उसे ठीक से स्टैप्स रखने बताए, तो उस क्षण-भर की निकटता से उसका मन नाच उठा। पर दो क्षण बाद ही लिली सरक गई। आख़िर चन्द्रकांत लिली की ममी के पास जाकर बातों में मशगूल हो गया। उसने धीरे-से पूछा, 'क्रिसमस ट्री के लिए प्रेज़ेंट्स का बंडल वक्त पर आ गया था?'

'प्रेज़ेंट्स आप ख़ुद चुनकर लाए थे?' ममी ने पूछा।

'नहीं-नहीं, लिली ने परसों ही मुझे लिस्ट बनवा दी थी।' चन्द्रकांत ने कहा।

'ओह तब तो लिली खुद जाकर आपके लिए अपने मन का क्रिसमस प्रेज़ेंट लाई होगी!' लिली की ममी ने कहा।

'और वे बोतलें आ गई थीं?'

'ओह इट इज़ सो काइण्ड आफ़ यू! इट इज़ ऑल बिकाज़ ऑफ़ यू!'

लिली की ममी ने कहा तो चन्द्रकांत गद्गदायमान हो गया। शहादत के उसी जोश में चन्द्रकांत इधर-उधर घूमती लिली को ताकता रहा और अपना ग़म ग़लत करता रहा।

'आख़िर जब नाच की थकान हावी होने लगी और लोग सरूर में आने लगे तभी पादरी आ गए और सब लोग उस कमरे में पहुंचे जहां क्रिसमस ट्री था। बहुत-सी मोमबत्तियां उसके चारों ओर जल रही थीं।

'क्रिसमस ट्री उपहारों से लदा हुआ था। पादरी ने एक खिलौना तोड़कर लिली के छोटे भाई के हाथों में थमा दिया। तालियां बजीं। बच्चों को उपहार दे चुकने के बाद बड़ों की बारी आई। चन्द्रकांत की नज़र लटकते हुए एक नीले लिफ़ाफ़े पर जमी थी। उस पर किसका नाम था, यह वह ठीक से नहीं देख पा रहा था, पर मन कहता था कि यह उसी के लिए है… आखिर आज उसे वह नीला लिफ़ाफ़ा मिल ही गया था जिसे वह रोज़ लिली के पर्स में खोजता था। आखिर पादरी ने वह नीला लिफ़ाफ़ा तोड़ा और नाम पढ़कर चन्द्रकांत के हाथों में थमा दिया। उसका दिल बुरी तरह धड़क उठा—एकाएक वह बहुत बेचैन हो गया। सब अपने-अपने उपहारों को देखने और तारीफ़ करने में मशगूल थे, तभी चन्द्रकांत सबकी नज़र बचाकर बाहरवाले बरामदे में पहुंचा। जलती हुई बत्ती के नीचे खड़े होकर उसने एक बार हसरत-भरी निगाह से उस नीले लिफ़ाफ़े को देखा, फिर उसे सूंघा, वह सेंट से महक रहा था। आंख बंद करके उसने उस लिफ़ाफ़े को एक बार चूमा, फिर आंखें खोलकर लिली की लिखावट में अपना नाम पढ़ा और धड़कते दिल से उसे खोल डाला।'

यहां तक कहानी सुनाकर वे सज्जन चुप हो गए। एक क्षण रुककर उन्होंने कहानी सुनने वालों से सवाल किया, 'तो दोस्तो! बतायें उस नीले लिफाफे में क्या था?'

झट से एक ने कहा, 'लिली का पहला प्रेमपत्र।'

'कुछ और सोचिए!' कहानी सुनानेवाले ने कहा।

'लिली का फ़ोटो!' दूसरे ने कहा।

'और सोचिए!' कहानी सुनानेवाले ने ज़ोर दिया।

'लिफ़ाफ़ा खाली था!' तीसरे ने कहा।

हल्का-सा ठहाका लगा। तभी कहानी सुनानेवाले ने कहा, 'जी नहीं, उसमें जश्न पार्टी के खर्चे का बिल था… और लिली की लिखावट में लिखा था 'प्लीज़ अटैंड टू इट—लिली!' और ऊंचे उठते हुए ठहाकों के बीच फिर किसी ने और आगे नहीं सुना कि चन्द्रकांत पर क्या बीती! वह नाच कहां जाकर ख़त्म हुआ!

शरीफ़ आदमी

एक नौजवान सज्जन, रामानंद गाड़ी से उतरे और लिफ्ट में चढ़कर सीधे ऊपरवाली मंज़िल के रिटायरिंग रूम में पहुंचे। कुली से सामान भीतर भिजवा करके खुद बाहर रुक गए। रात के सफर से पैंट और कोट मलगजे हो गए थे। कमीज़ की आस्तीनें और कालर के किनारे काले हो गए थे। रिटायरिंग रूम के चौकीदार को खोज पाते ही उन्होंने सवाल किया—'तुम यहां के चौकीदार हो!' 'हां' में उत्तर मिलते ही उन्होंने एक अठन्नी उसकी हथेली में रखी और बताया, 'मैं एकाध घंटे के लिए रुकूंगा··· ज़रा बारबर को बुला दो!'

बारबर से उन्होंने भीतर कमरे में बैठकर दाढ़ी बनवाई। जूतेवाले से पालिश करवाई और नहाने चले गए। नहा-धोकर उन्होंने बढ़िया गवैडीन का सूट निकालकर पहना। एक गहरी, नीली टाई बांधी जिसके किनारे सफेद थे, और जो यूनानी तलवार की तरह लग रही थी। चौकीदार को बताकर वे फिर लिफ्ट से नीचे उतरे और रूमाल से जूते की धूल को झाड़ते हुए रिफ्रेशमेंटरूम में नाश्ते के लिए घुस गए।

कमीज़ का कालर ठीक करते हुए उन्होंने बैरे से वह सब कुछ पूछा जो पका था, या पकने वाला था और दो अंडों, एक पेयर टोस्ट और ट्रे में चाय का हुक्म देकर इन्तज़ार करने लगे। नाश्ता आया तो सबसे पहले उन्होंने छुरी, कांटे और चम्मच को उलट-पलटकर देखा। मेज़ पर उंगली से ठोककर उन्होंने बड़ी शालीनता से बैरे को बुलाया और कांटे में भरे मैल को दिखाते हुए बोले, 'यह गंदा है!'

बैरे ने कांटा कपड़े से पोंछते हुए कहा, 'साब पालिश छूट गया इसलिए काला लगता···'

'नहीं···नहीं, दूसरा लाओ!' कुछ खिन्न होकर बात काटते हुए उन्होंने कहा

और चम्मच से अंडा खाने लगे। नाश्ता करके उन्होंने बैरे को टिप दी और सौंफ खाते हुए बाहर निकल आए। रिटायरिंग रूम के चौकीदार से सलाम लेकर लिफ्ट से फिर नीचे उतरे। सामान में से पोर्टफोलियो बैग निकाला, उसे बगल में दबाया और बाकी सामान क्लोक रूम में रखकर स्टेशन से बाहर निकल आए।

एक पान की दुकान पर जाकर उन्होंने पान खाया, सिगरेट सुलगाई, जेबी कंघा निकालकर बाल संवारे और सिगरेट मुंह में दबाकर शीशे में देख-देखकर धुंआ उगला, टाई ठीक की, पैर पटपटाकर जूते झाड़े और ज़रा नीचे सरक गई पैंट को कमर पर उकसाकर आगे बढ़ गए। बस में बैठकर क्नाट सरकस पहुंचे। बस से उतरकर उन्होंने अपने बूट के ढीले हो गए फीतों को कसा और एक मोटर साइकिल रिक्शा की तलाश में नज़रें दौड़ाने लगे। उसी क्षण वह हाज़िर हो गया। पैसे तय करके वे उस पर जम लिए। कुछ देर बाद और सवारियां पूरी करके मोटर रिक्शा तूफान की तरह उड़ चला।

पार्लियामेंट हाउस के बाहरवाले गेट पर सरदारजी ने रिक्शा रोका। और सवारियां उतर गईं, पर श्री रामानंद बैठे रहे। उन्हें बैठा देखकर सरदारजी ने कहा, 'बाबू साहब यहीं उतरना होगा!'

'यह तो पार्लियामेंट हाउस है। मुझे तो साउथ एवेन्यू उतरना है···' रामानंद ने सरदारजी की तरफ आंखें टेढ़ी करते हुए कहा।

'इद्र उतरना है। इद्र से ट्रैफिक के लिए मनाई है। जाएगा तो चालान होएगा!' सरदारजी ने रिक्शे की मरमराहट और तेज़ करते हुए वापस जाने की जल्दी दिखाई। रामानंद को यह बात खल गई। बोले, 'हम नहीं जानते, हमको साउथ एवेन्यू उतरना है!'

'बाबू साहब एक मिन्ट का रास्ता है यहां से। हम लोग को जाने का हुकुम नहीं···जल्दी कीजिए···' सरदारजी ने खिजलाते हुए कहा।

उसकी सीट पर पैसे रखकर रामानंद भुनभुनाते हुए उतरे कि सरदार ने बांह पकड़ी, 'ऐ साहब···पूरा पैसा दीजिए···यही रेट है यहां का!'

एकदम बौखलाते हुए रामानंद बरस पड़े, 'बाहर का समझकर लूटना चाहता है! समझता है मैं गधा हूं···'

'मैं कुछ नहीं समझता, पूरा पैसा समझता हूं।' सरदार ने मोटर बंद करके कहा।

'इससे ज़्यादा नहीं मिलेगा, लेना हो ले जाओ, नहीं तो फेंक जाओ!' आगे बढ़ने के लिए कदम उठाते हुए रामानंद ने कहा, तो सरदार लपककर सामने जा पहुंचा, 'फेंककर, नहीं, पूरा पैसा लेकर जाऊंगा···'

कतराकर निकलते हुए उन्होंने बड़ी बेरुख़ाई से कहा, 'जो देता हो उससे वसूल कर लो…' और आगे बढ़ने लगे।

'वसूल तो अभी कर लूंगा…' तमककर सरदार ने कहा।

अपना पोर्टफोलियो ज़मीन पर फेंक, टाई झटकाकर कोट की आस्तीनें चढ़ाते हुए रामानंद एकदम बिखर उठे, 'तू मुझे पढ़ा-लिखा शरीफ़ आदमी समझता है! हैं…तेरी ऐसी की…'

झटके से बैग खुल गया था और उसमें रखे हुए डिग्रियों के सर्टीफिकेट और तमाम काग़ज़ बाहर निकल आए थे।

आत्मा अमर है

अंग्रेज़ों के जाने से पहले इस क्लब की बड़ी शान-शौकत थी। क्लबों की जात-पांत में यह क्लब ब्राह्मण माना जाता था। इसका ब्राह्मणत्व तो अभी भी बरकरार है, पर यह बात नहीं रह गई। खर्चा अब भी बहुत है और प्रवेशाधिकार भी आसान नहीं। इसमें वही सरकारी लोग प्रवेश पाते हैं जिनकी तनख़्वाहें दो हज़ार के ऊपर हैं, सवारियां स्कूटर से हैं और बीवियां अपने-पराये के ऊपर हैं।

इस क्लब की कुलीनता का बड़ा ध्यान रखा जाता है—सरकारी अफसरों के अलावा डाक्टर, बैरिस्टर और पाये के पत्रकार ही इसमें जैसे-तैसे घुस पाते हैं...

जब से अंग्रेज़ गए, इसमें वह रौब-दाब नहीं रह गया; हां, चहल-पहल पहले से भी कुछ ज्यादा ही है।

और खासतौर से कुछ रातें ऐसी हंगामे की गुज़री हैं जो इस क्लब के इतिहास में अमिट बन गई हैं। उनमें से भी एक रात बेहद हंगामे की गुज़री—वह रात हमेशा 'प्रवचनों वाली रात' के रूप में याद की जाएगी। प्रवचन रात के करीब साढ़े दस बजे हुए थे। डांस रोककर हुए थे।

वह शाम ही बेहद रंगीन थी। उसी शाम ब्रिज में सत्रह सौ रुपये हारकर मिसेज़ वासवानी ने अकाउंट में नोट कराए थे और परमार की तलाश में घूमने लगी थीं। आखिर वह स्विमिंगपूल पर मिस चंद्रा के साथ मिला था। परमार की आवभगत ख़ास मौकों पर बड़ी होती थी, क्योंकि काकटेल बनाने में उससे सब मात खाते थे—'सिर्फ तीन राउंड ! तो सबसे पहले रम-आरेंज दो... फिर जिन एंड लाइम और बाद में व्हिस्की।'

मिसेज़ वासवानी ने उसे पकड़ा तो वह समझ गया। काउंटर पर आते ही उसने आर्डर दिया और दोनों को लिए-दिए मेज़ पर बैठ गया। मिसेज़

वासवानी और मिस चंद्रा को ब्रांडी और जिंजर दिया और अपने लिए फ्रेंच बरमूथ और आरेंज मंगाकर जम गया। सत्रह सौ की हार का गम ग़लत करने के लिए आज उसे परमार की शरण लेनी पड़ी थी। परमार की ख्याति बड़े ही दूसरे रूप में थी। उसे यहां की सभ्य भाषा में बड़ा ही खुरदरा, ओवर स्मार्ट और 'ही' समझा जाता था।

ब्रिज में हारती किसी भी महिला को वह डमी बनाकर बैठ जाता था और जिताकर उठ जाता था। अपने-अपने साहबों के आने से पहले तक सभी कुलीन महिलाएं उसके आस-पास घूमती थीं और उनके आ जाने के बाद दूर-दूर हो जाती थीं।

मिस्टर वासवानी आए तब शाम गहरी हो चुकी थी और परमार मिसेज़ वासवानी के एकाउंट में चार पैग पी चुका था। मिसेज़ वासवानी उससे कतराकर अलग चली गई, मिस्टर वासवानी ने उन्हें देख लिया था। थके और भूखे होने के कारण वे अपनी मिसेज़ के साथ एक कोनेवाली मेज़ पर जाकर बैठ गए।

फ्लोर तैयार था, बैंडवाले मैनेजर के कमरे में कुछ गपशप कर रहे थे और रात धीरे-धीरे रंगीनी पर जा रही थी। टेनिस नेट उखड़ चुके थे और एक लड़का फ्लोर पर लगी खड़िया को साफ कर रहा था। मार्कर उधर बिलियर्ड रूम में झांक रहा था।

मिस्टर वासवानी बड़े आहिस्ता-आहिस्ता कुछ खा रहे थे और मिसेज़ अपनी हार की दास्तान सुनाकर ग़मगीन-सी बैठी हुई थीं।

परमार मिस चंद्रा को लिए हुए सामनेवाली मेज़ पर बैठा था और रह-रहकर मिसेज़ वासवानी को ताक रहा था। वासवानी ने एक बार देखा और धीरे-से अपनी भावनाओं का इज़हार किया—'स्वाइन।'

परमार बराबर देखे जा रहा था। चारों तरफ उन्मुक्त हंसी की खिलखिलाहट थी और देशी-विदेशी सिगरेटों-शराबों की महक छा रही थी।

बैंड शुरू हो गया था।

ओ⋯ ओ⋯लव मी टेंडर⋯ओ ⋯ओ

बैरे ट्रेज़ के लिए आदमी-औरतों के सैलाब के बीच तैर रहे थे और मेज़ों के नीचे हल्की थापें पड़ रही थीं। एक साहब बगल में बैठी महिला के कंधे पर ही थाप दे रहे थे और बेसाख़्ता पाइप पी रहे थे। धुएं के नायलॉनी आंचल छत और फर्श के बीच में लहरा रहे थे।

भीड़ बढ़ती जा रही थी। बाहर पोर्च में रह-रहकर कारों के रुकने की आवाज़ें आ रही थीं और हंसते-खिलखिलाते जोड़े भीतर आ रहे थे। गिरोहों में इधर-उधर खड़े लोगों के बीच हर आता हुआ आदमी समा जाता था⋯

साड़ियों की सरसराहट और कस्मेटिक्स की गंध जैसे किचन से फूट-फूटकर आ रही थी। परमार बार-बार मिसेज़ वासवानी को घूरे जा रहा था और वासवानी की त्योरियां भीतर-ही-भीतर चढ़ती जा रही थीं। खाते-खाते वह कसमसा रहा था। एकाध बार उसने कनखियों से अपनी मिसेज़ की ओर देखा, पर वह बैंड की धुन में खोई हुई थी। इससे वासवानी को थोड़ी राहत मिली। कुछ क्षणों बाद उनकी परेशानी और भी बढ़ गई। परमार सीटी पर धुन बजा रहा था··· ओ ···· ओ ···· लव मी टेंडर··· और बड़े ही बेहूदे ढंग से मिसेज़ वासवानी को ताकने लगा था। मिस्टर वासवानी ने इस बार अपनी मिसेज़ का ध्यान उस तरफ जाते हुए देखा तो भुनभुनाया—'इनडीसेंट!'

मिसेज़ वासवानी ने माथे पर आए पसीने के मोतियों को रूमाल से चुन लिया।

और इस मोती चुनने की घटना के आधे मिनट बाद ही वह ज़बरदस्त हादसा क्लब में हुआ जो आज तक के इतिहास में कभी नहीं हुआ था···

मिस्टर वासवानी प्लेट से कांटा लेकर उठे—परमार की मेज़ तक गए और उसके नथुनों में कांटा फंसाकर नाक नोंच लाए।

सिसकारियों, दबी हुई चीख़ों, आश्चर्य से फटी आंखों और तमाम रिमार्कों से क्लब का वातावरण गूंजने लगा। औरतें बहुत ज्यादा डर गई थीं और मिस्टर वासवानी कांटे में फंसी हुई परमार की नाक को जीते हुए झंडे की तरह उठाए हुए थे।

मेज़ों से कोई नहीं उठा। सब अपनी-अपनी जगह बैठे हुए आश्चर्य और दुःख प्रकट कर रहे थे। मिस्टर वासवानी बाएं हाथ में कांटा उठाए हुए दाहिने हाथ से खाते जा रहे थे।

परमार ने जब कटी हुई नाक से रूमाल हटाया, तो उसकी शक्ल की बदली हुई सूरत पर एक हल्की हंसी गूंज गई और एक महिला ने अपने साथी की बांह दबाते हुए कहा—'लुक्स मोर हैंडसम। ऊं!'

बैंड दूसरी धुन बजाने लगा था।

और जोड़े धीरे-धीरे फ्लोर पर उतरने लगे थे···एक अजीब थिरकन सब पर हावी होती जा रही थी। मिस्टर वासवानी के सामने से प्लेटें हट चुकी थीं और परमार अपनी नाक पर रूमाल दबाए बैठा था। तभी एक आवाज़ सुनाई पड़ी··· लेडीज़ एंड जैंटिलमेन! यह आवाज़ वासवानी की थी और उन्होंने अंग्रेज़ी में बोलना शुरू किया था। उनके बाएं हाथ में वह कांटा था जिस पर परमार की नाक उलझी हुई थी।

"लेडिज़ एंड जैंटिलमैन!···

उस रात का पहला प्रवचन यही था—

"आप कर्नल परमार को जानते हैं! उनकी तारीफ करने का यह वक्त नहीं है। दूसरे महायुद्ध के दौरान उन्होंने ईजिप्ट में हिन्दुस्तानी फ़ौज और कौम के लिए बड़ा नाम कमाया है...जब मैं क़ौम का नाम लेता हूं, तो मुझे दुनिया की तमाम दूसरी कौमों की याद आती है...हर कौम एक नैतिक संकट से गुज़र रही है...आज इस ज़माने में जबकि अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर हर क़ौम युद्ध और शान्ति की समस्या से जूझ रही है, हमारी क़ौम को एक बड़ी ज़िम्मेदारी उठानी है! और उस वक्त जबकि दुनिया में हर तरफ यही पूछा जा रहा है कि नेहरू के बाद कौन? नेहरू के बाद कौन...

"ऐसे नाज़ुक वक्त में हमें बड़े हौसले और ज़िम्मेदारी से चीज़ों को समझना और सुलझाना है...

"संयुक्त राष्ट्र इसी महान उद्देश्य को लेकर बनाया गया है लेकिन हम देख चुके हैं कि मानवता का एक निहायत ख़ूबसूरत ख़्वाब लीग ऑफ नेशंस किन कारणों से धूल में मिल चुका है! आज संयुक्त राष्ट्र फिर कमज़ोर होता दिखाई पड़ रहा है...कांगो के मसले को ही लीजिए।...यहां पर मुझे जटाका टेल्ज़ की एक कहानी याद आती है, ख़ैर कहानी को छोड़िए क्योंकि मैं कर्नल परमार के बारे में कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ था...

"कर्नल परमार की हरकतों को आप लोगों ने शायद नहीं देखा होगा...अभी-अभी जो कुछ भी हुआ है, यह कांटा उसका सबूत है जिस पर उनकी नाक रखी हुई है! यह सब यूं ही नहीं हो गया...इस पूरी घटना के पीछे ईविन्ट्स का एक पूरा सिलसिला है! आप जब उस सिलसिले को जानेंगे तो मेरी बात की ताईद करेंगे। मेरे उठाए हुए कदम को सही मानेंगे। उनकी नाक को इस तरह नोंच लाने के पीछे मेरा कोई बुरा इरादा नहीं है, क्योंकि सब बातों के बावजूद मैं कर्नल परमार की बहुत इज़्ज़त करता हूं। उनकी वीरता और साहस का मैं कायल हूं...काक्टेल्स बनाने की उनकी महारत पर पूरे क्लब को नाज़ है...

(तालियां)

"तो मैं यह कह रहा था कि हमें सबकी अच्छाइयों पर नज़र रखनी चाहिए। जहां तक अच्छाइयों पर नज़र रखने का सवाल है, मेरे ख़्याल से इस नामी क्लब का हर मेम्बर इसीलिए बाहर इज़्ज़त से देखा जाता है कि वह अच्छाइयों को देखता है...

"उपनिषद् में कहा है, जिसके लिए मैं स्वामीजी का आभारी हूं, जिन्होंने कुछ ही दिन पहले हमारे इस क्लब में भाषण दिया था, कि दुनिया में आत्मा ही

सबसे बड़ी चीज़ है। आत्मा के बगैर दुनिया का कोई वजूद नहीं है। आज संसार में हर जगह, हर मुकाम पर इसी आत्मा की ज़रूरत है—चाहे वह क्यूबा का मामला हो, कामन मार्केट का हो, अफ्रीका के काले लोगों का हो...कला, साहित्य और संगीत का हो...आणविक अस्त्रों या शांति का हो!

"तो यह आत्मा ही सबसे बड़ी चीज़ है! अपनी क़ौम ने, 'आत्मा' की महत्ता को पहचाना है, इसीलिए मुझे तकलीफ होती है जब मैं किसी की आत्मा को मरते हुए देखता हूं! कर्नल की आत्मा भी मर रही थी। इसीलिए मुझे यह कदम उठाना पड़ा ताकि उनकी आत्मा को आज एक धक्का लगे वे समझें कि कुलीनता क्या है? सभ्यता क्या है? क्लबों में आया-जाया जाता है? और यहां पर महिलाओं के साथ कैसे व्यवहार किया जाता है!

"आज, इस वक्त, जबकि मैंने उनकी नाक नोंच ली है, मैंने उनकी उसी आत्मा के दरवाज़े पर एक सभ्य दस्तक दी है। क्योंकि आत्मा के बगैर इन्सानी ज़िन्दगी का कोई मतलब नहीं है...कला, साहित्य, संगीत, समाजवाद और शांति का कोई मतलब नहीं है!

(बेपनाह तालियां!)

"इन लफ़्ज़ों के साथ मैं अपनी बात खत्म करना चाहता हूं। मुझे अफसोस है कि मैंने आप लोगों का काफी वक्त लिया...धन्यवाद!"

फिर बेपनाह तालियों के शोर से पूरा क्लब गूंज गया। और मेज़ों के इर्द-गिर्द तारीफ़ की बातें शुरू हो गईं—'मिस्टर वासवानी इज़ ए जीनियस!

'ही इज़ ए स्टोर हाउस आफ विज़डम!...'

'कमाल है...कांगों से लेकर सोल तक!'

और तरह-तरह की प्रशंसा-भरी फुसफुसाहटें चारों ओर होने लगीं। मिस्टर वासवानी की धाक इसीलिए थी। एक महिला ने तो यहां तक सुझाया कि 'वार्षिक दिवस' पर मिस्टर वासवानी का भाषण ज़रूर कराया जाए।

तालियों की गड़गड़ाहट काफी देर तक गूंजती रही थी। मिस्टर वासवानी परमार की नाक कांटे में उलझाए उसी तरह शान से बैठे थे और गर्व से अपने भाषण का असर देख रहे थे।

कर्नल परमार इस बीच उठकर चले गए थे, वे ब्रांडी में रूमाल भिगोकर अपनी नाक पर रखे रहे थे और कुछ भाषण देने के लिए तिलमिला रहे थे।

बैंड फिर बजने लगा था।

जोड़े फिर फ्लोर पर थिरकने लगे थे।

धुएं के नायलानी आंचल फिर उड़ने लगे थे।

तभी एक आवाज़ फिर सुनाई दी—लेडीज़ एंड जैंटिलमेन!

लोग उधर मुख़ातिब हुए। कर्नल परमार अपनी मेज़ पर खड़े थे, नाक पर ब्रांडी से भीगा रूमाल रखा था, इसलिए उनकी आवाज़ कुछ नकसुरी हो रही थी।

"लेडीज़ एंड जैंटिलमेन!"

परमार ने बोलना शुरू किया, तो हल्की हंसी बिखर गई।

"अभी-अभी मिस्टर वासवानी ने मेरे खिलाफ बहुत-सी बातें बड़े ही शाइस्ता ढंग से कहीं हैं, उनका लोहा मैं भी मानता हूं। इसीलिए मेरे मन में उनकी बड़ी इज़्ज़त है। आज की सोसाइटी में इतने समझदार और सभ्य लोग कम ही हैं। इतने बुद्धिमान और दुनिया की समस्याओं को गहराई से समझनेवाले और भी कम हैं!

"मैं पहले ही माफी मांग लेता हूं कि मैं उनकी तरह धाराप्रवाह और गम्भीरता से हर मामले पर नहीं बोल सकता! जैसाकि उन्होंने किया है। उनका सम्बन्ध क़ौम की हर समस्या से बहुत गहरा है, क्योंकि वे एक ज़िम्मेदार अफसर हैं। उनकी जानकारी की बराबरी करना भी मेरे वश में नहीं है।

"फिर भी मैं आत्मावाले मसले को उठाना चाहूंगा और निहायत शिष्टता से जो गालियां उन्होंने मुझे दी हैं, उनका प्रतिवाद करना चाहूंगा।

"आत्मा, जैसाकि आप सभी ने सुना था, जब स्वामीजी ने यहीं इसी ऐतिहासिक क्लब में अपना भाषण दिया था, वह चीज़ है जो जलाने से जलती नहीं···मारने से मरती नहीं, चोर उसे चुरा नहीं सकता और नष्ट वह हो नहीं सकती! सबके पास एक-एक आत्मा है···मेरे पास भी है···मैं नहीं जानता की कांगो में, अफ्रीका में, संयुक्त राष्ट्र में और दुनिया की दूसरी अहम जगहों पर आत्मा का क्या इस्तेमाल हो रहा है, वह मर रही है या जी रही है? पतित हो रही है या विकसित हो रही है, शांति के लिए क्या-क्या काम कर रही है; पर जहां तक मेरी आत्मा का सम्बन्ध है···मैं बड़े साफ शब्दों में कह देना चाहता हूं कि वासवानी साहब ने जो गालियां मुझे दी हैं उनका कोई असर कम-से-कम मेरी आत्मा पर नहीं हुआ है।

"जब आत्मा अमर है···वह जलती नहीं, मरती नहीं तो भला इन गालियों का क्या असर उस पर हो सकता है? और आप समझदार लोगों ने वासवानी साहब के भाषण के दौरान जो हिकारत मेरे प्रति दिखाई है और जो थूका है···

"क्योंकि आत्मा जलती नहीं, मरती नहीं, इसीलिए आपके थूकने के कोई निशान भी उस पर नहीं पड़ सकते!

बस मुझे यही कहना है!"

(बेपनाह तालियां!)

बैंड की आवाज़ तालियों की गड़गड़ाहट में डूब गई। गुणग्राहक लोगों में फुस-फुसाहट शुरू हुई···'इंटेलीजेंट चैप!'

'ओरिजिनल इंटरप्रटेशन!'

'भई हद है···क्या तोड़ा है बात को!'

तालियों की एक बौछार फिर हुई!

परमार ने आगे जोड़ा—"वासवानी साहब मेरी नाक कांटे से नोंचकर ले गए हैं! मेरी समझ में नहीं आता कि नाक और आत्मा का सम्बन्ध क्या है? और मेरी नाक नोंचकर वे किस तरह मेरी आत्मा पर असर डाल सकते हैं!"

तालियों के शोर में सब कुछ डूब गया।

"मैं चाहता हूं कि मेरी नाक वापस दिलवाई जाए!" परमार ने आंदोलन करने के लहजे में कहा। सभी लोगों की भौंहें इस आन्दोलनी अंदाज़ में कही हुई बात को सुनकर टेढ़ी हो गई। यह हवा आज पहली बार इस क्लब में आई थी।

'ही वान्ट्स ए मूवमेंट!'

'डैम हिम!'

और फिर बैंड की तीसरी धुन बजने लगी।

जोड़े फ्लोर पर थिरकने लगे।

मिस्टर वासवानी आखिर अपनी मिसेज़ को लेकर फ्लोर पर उतर पड़े। कर्नल परमार के चेहरे में जो ख़ासियत पैदा हुई थी, उससे खिंचकर बहुतों ने चाहा था कि वह उनके साथ आज डांस करे···कितना अजीब होगा आज उसके साथ नाचना? एक अजीबो-ग़रीब अनुभव जो आज तक किसी महिला को प्राप्त नहीं हुआ होगा।

परमार ब्रांडी से भीगा रूमाल नाक पर चिपकाए चुपचाप अपनी मेज़ पर बैठा जिन पी रहा था।

दोनों प्रवचन समाप्त हो चुके थे।

वासवानी बाएं हाथ में कांटे पर परमार की नुची नाक उलझाए अपनी मिसेज़ के साथ ही नाच रहा था। थिरकते हुए जोड़े बार-बार सर्किल लेते हुए उन्हीं के पास से चक्कर काट रहे थे।

आखिर रात भीगने लगी। एकाएक हाल की बत्तियां कुछ पलों के लिए गुल हुईं और चुम्बनों की आवाज़ से वातावरण भर गया।

बत्तियां जलते ही एकाध राउंड और हुआ और लोग थके-मांदे लड़खड़ाते कदमों से बाहर निकलने लगे।

वासवानी कांटे को उसी तरह लिए हुए अपनी मिसेज के साथ बाहर जाने

लगा तो क्लब का हेड बेयरा बड़े ही शालीन ढंग से उनके पास पहुंचा और अदब से बोला, "हुजूर कांटा!"

"ओह कांटा!"

मिसेज़ वासवानी ने अपने मिस्टर की तरफ एक क्षण भरी-भरी शोख नज़रों से देखा और ठुनकते हुए धीरे-से कहा, "डार्लिंग प्लीज़...ऊं!"

और वासवानी का रुख देखकर उन्होंने रूमाल से पकड़कर कांटे में फंसी हुई नाक निकाल ली। वासवानी ने कांटा हेड बेयरे को पकड़ा दिया जो बाअदब उसे लेकर भीतर चला गया। मिसेज़ वासवानी ने एक मुस्कराती हुई नजर अपने मिस्टर पर डाली और कर्नल परमार की मेज़ की ओर चल दीं।

परमार के पास पहुंची तो उनकी आंखों में एक अजीब रंगीनी थी और परमार की आंखों में एक नशा।

उन्होंने रूमाल हटाकर परमार के चेहरे पर वह नुची हुई नाक चिपका दी और अपने बैग से छोटा पफ़ निकालकर उसके किनारों को पाउडर से यकसां कर दिया।

क्लब में बचे हुए लोगों ने फिर तालियां बजाईं और खुशी ज़ाहिर की।

और इस तरह प्रवचनों वाली उस रात का अंत हुआ, जो इस क्लब के इतिहास में हमेशा याद की जाएगी।

ब्रांच लाइन का सफ़र

ब्रांच लाइन की गाड़ी और ऊपर से सर्दियों की बरसाती शाम। डिब्बे में कतई भीड़ नहीं थी। आठ-दस मुसाफिर दुबके हुए इधर-उधर आराम से लेटे या बैठे थे। मैं इसलिए ऊपरवाली सीट पर लेट गया था कि रास्ते में कोई टोके न। अंधेरे और सुनसान स्टेशन पर सिर्फ इंजिन की आवाज़ गूंज रही थी। डिब्बे में ठिठुरन थी और बत्तियां कोहरे में लिपटकर टिमटिमा रही थीं। इतने में तम्बाकू के दो व्यापारी कंबल लपेटे हुए घुसे और इधर-उधर आराम से लेट सकने के लिए अच्छी जगह की तलाश में आंखें घुमाने लगे। मेरे नीचे वाली सीट खाली थी। शायद एक कंबल में गुज़ारा कर सकने के कारण वे दोनों व्यापारी एक ही सीट पर आ बैठे, अभी गाड़ी चली नहीं थी। एकाध बेटिकट आवारा लड़के भी सर्दी में ठिठुरते हुए घुसे और उन्होंने दरवाज़ा बंद कर लिया गाड़ी का डिब्बा बक्से की तरह बंद हो गया और बीड़ियों का धुआं धीरे-धीरे बुरी तरह भरने लगा। नीचे की सीट पर एक कंबल में लिपटे हुए दोनों व्यापारी कुछ देर तक गालियां दे-देकर तंबाकू और दूसरी चीज़ों के भाव-ताव तथा सरकारी करों के बारे में बात कर रहे, फिर एक बोला, "यार, बड़ी सर्दी है। एक कंबल में कैसे गुज़ारा होगा?"

दूसरे व्यापारी ने शायद इधर-उधर देखा और कुछ रुककर बोला, "सब हो जाएगा। स्वामीजी को नहीं देखते..." पहला व्यापारी शायद उसकी बात की चित्रात्मक स्थिति को देखते ही हंस पड़ा। मैं किताब पढ़ने लगा था कि एकाएक उसी व्यापारी की आवाज़ सुनाई पड़ी, "ऐ बाबूजी..." वह शायद मुझसे कुछ कहना चाहता था। मैंने गर्दन नीचे लटकाई तो वह बोला, "आपको सर्दी नहीं लग रही है?" अकस्मात् ऐसे बेमानी प्रश्न के लिए मैं तैयार नहीं था। एकदम बोला, "मैं आपका मतलब समझा नहीं।" और मैंने उसे गौर से देखा—वह

दुपल्ली टोपी लगाए था और मफ़लर को टोपी के ऊपर से कसकर गले में गांठ बांधे हुए था। बंद गले के कोट के कालर पर मैल पाइपिन की तरह जमा था और उसकी आंखों में काजल की लकीरें थीं। एकाएक देखने पर वह आदमी नितांत चरित्रहीन और रसिया लगा। उसने काजल लगी आंखें मटकाकर कहा, "हम तो साहब इतने कपड़े पहने हैं, ऊपर से लाल इमली का यह कंबल ओढ़े हैं, पर सर्दी नहीं जाती..." कहकर वह सी-सी करने लगा और उसने बड़े बेहूदे ढंग से आंखें चलाईं।

मैं उपेक्षापूर्ण ढंग से अपनी सीट पर सीधा हो गया, तो दूसरे व्यापारी की आवाज़ सुनाई दी, वह कह रहा था, "अरे तुझे नींद नहीं आती तो बाबू साहब को क्यों परेशान कर रहा है। बेमतलब छेड़ता है।"

"यह रात भला सफर करने की है।" उस बेहूदे व्यापारी ने दूसरे को जवाब दिया और बड़े ही कुत्सित ढंग से सी-सी करने लगा, "कहां ला पटका यार! दस-बीस रुपये ही खर्च होते, रात तो आराम से कटती..."

"और कोई देख लेता तो जूते पड़ते।" दूसरे व्यापारी ने कहा, तो वह बेहूदा व्यापारी एकदम बोला, "अबे अपनी जेब का नामा ढीला करते हैं। किसी से मांगने नहीं जाते। दस-बीस रुपये इन औरतों पर भी फेंकने चाहिए...आखिर जाड़े-पाले में मुंह पर पौडर-लाली लगाके बैठती हैं...हम जैसों का ही आसरा है बेचारियों को।"

"तुम जैसे आदमियों का नहीं, तुम्हारी जेबों का। ऐसे कहो।" उस दूसरे व्यापारी ने कहा और शायद एक ही कंबल के कारण अपनी ठंडी टांगें उसके पेट में घुसेड़ दीं। वह बेहूदा व्यापारी भद्दी-सी गाली देते हुए बिगड़ा, "ख़ामख़्वाह टांगें घुसेड़े दे रहा है...तेरी टांगों में कुछ दम भी है...?"

"इन टांगों का दम सब वहीं निकल गया...इसीलिए समझा रहा हूं बेटा। समझे!" दूसरे व्यापारी ने कहा तो वह बेहूदा फिर बोला, "दुनिया का मज़ा लेके सब संन्यासी बन जाते हैं। ऐसा कोई बता जो सारे मज़े छोड़कर संन्यासी हो गया हो...मैं मान लूंगा उसकी बात..."

"बदनलाल हलवाई को देख। भरी जवानी में साधू हो गया।" उस दूसरे आदमी ने कहा तो वही बेहूदा व्यापारी बात काटकर बोला, "अरे बस रहने दे यार मेरे! मालूम है तुझे कुछ...उसकी लुगाई शादी के बाद घर गई, तो फिर लौटी ही नहीं। जनखा था साला, साधू हो गया...इज़्ज़त बचाने के लिए ढोंग रच लिया बदमास ने।"

"बेपर की उड़ाने में तुझे मज़ा आता है। दस साल लंगोट बांधा था बदनलाल ने। वह तो उसका मन फिर गया बीबी से। बेकार की हांक देता

है।" दूसरे ने कहा तो वह बेहूदा व्यापारी बिगड़ा, "अच्छा छोड़ मेरा कंबल··· एक तो रात भर के लिए लाके इस ठंडी चट्टान पर डाल दिया, ऊपर से त्याग-संन्यास सिखा रहा है। तेरा तो खून ठंडा हो गया है···"

गाड़ी कुहरे से भरे ठंडे मैदानों में से गुज़र रही थी। इसलिए डिब्बे की दीवारें बर्फ की तरह ठंडी हो गई थीं और खुले हुए बदन से छूते ही ऐसा लगता था, जैसे किसी ने बर्फ में दबाई हुई तलवार से वार किया हो, और सुन्न पड़े शरीर से सर्द खून की धार बह-बहकर जगह-जगह भिगोती हुई चली जा रही हो।

मैं उन दोनों व्यापारियों की बातों से ही चिढ़ रहा था। पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय तथाकथित गंदी औरतों और गंदी आदतों से वैसे ही चिढ़ते और परहेज़ करते हैं, जैसे तथाकथित ब्रह्मचारी स्त्री के नाम से। और इस थोथी शालीनता, झूठी नैतिकता और खोखली संयमशीलता के पुलों के नीचे सभी गंदगियों के नाले धड़धड़ाते बहते रहते हैं।

"तो उसकी औरत को पागल कुत्ते ने काटा था?" वही बेहूदा व्यापारी जवाब दे रहा था, "ये सब कहने की बातें हैं···" बात बदलकर वह बोलता गया, "यार मार दिया तूने···" कहकर उसने फिर कुत्सित ढंग से सी-सी की और बोला, "गज़ब का जाड़ा है। हड्डी तक कांप रही है···" फिर वह बड़ी बेहूदी हंसी हंसा और सनकियों की तरह चीखा, "वाह भई वाह! यह तेज तो हमने देखा ही नहीं।" उसने शायद किसी औरत की ओर इशारा किया होगा, जिस पर उसके साथवाला व्यापारी भी मज़ा लेकर ऐसे हंसा, जैसे लैमनड्राप चूस रहा हो। उस बेहूदे व्यापारी ने, खंखारकर गला साफ किया और फर्श पर पिच्च-से थूका फिर उसने मुझे पुकारा, "ऐ बाबूजी, ऐ बाबूजी!"

मैंने फिर गर्दन लटका दी तो उसका चेहरा देखकर एकाएक मन-ही-मन हंस पड़ा। वह सुर्मा लगी आंखें पूरी-पूरी फाड़े हुए था और उसका निचला होंठ आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में बाहर लटक आया था। मुझे झांकते देख उसने सामने वाली सीट की ओर इशारा किया और वे दोनों व्यापारी आंखें मिलाकर हंस पड़े। मैंने उधर देखा—वह कोई औरत नहीं एक संन्यासीजी केवल लंगोटी लगाए नंगी सीट पर चित्त लेटे हुए थे। उनका शरीर नागफनी की झाड़ी की तरह लग रहा था। सर्दी से रोंगटे खड़े थे और पूरे शरीर पर भभूत मली हुई थी। उनकी लपेटी हुई जटाएं तकिए का काम दे रही थीं। बांहें छाती पर ऐसे कसी हुई थीं जैसे वे प्राणायाम की मुद्रा में मर गए हों और किसी ने उन्हें उसी तरह चित लिटा दिया हो।

"ब्रह्मचारीजी हैं।" वही बेहूदा व्यापारी बोला, "देख रहे हैं···हम सर्दी में

मरे जा रहे हैं और ये मस्त लेटे हैं।" स्वामीजी को इस तरह निष्काम और निष्कंप भाव से लेटा देख मुझे हंसी आ गई। मेरी हंसी से बढ़ावा पाकर वह दूसरा व्यापारी बोला, "देख ले तू! इसे कहते हैं शरीर की साधना।" उसने यह बात व्यंग्य में कही थी और इस तरह से देखा, मानो कह रहा हो कि आंखें बंद रखने के बावजूद वे सब देख-सुन रहे हैं। "इस भीषण सर्दी में उनका नश्वर शरीर भले ही कष्ट पा रहा हो, पर उनकी आत्मा अवश्य जाग रही होगी। देख लो, इसे कहते हैं ब्रह्मचर्य का तेज! सर्दी साली इसके सामने क्या चीज है।" उस बेहूदे व्यापारी ने कहा और ऐसे देखा, मानो प्रशंसा उसके मन से फूटी पड़ रही हो, वह फिर बोला, "वाह साहब वाह! भीतर ताकत की भट्ठी सुलग रही है," और वह सी-सी करके हंसा। मेरी हंसी भी फूट पड़ी तो स्वामीजी ने पलकें खोलीं, उनकी लाल-लाल आंखें ऐसे चमकीं जैसे किसी ने कोटरों की खाल उधेड़ दी हो और रक्तिम मांस झांक उठा हो।

"यह देखिए।" उस बेहूदे व्यापारी ने मुझे बीच में सानते हुए कहा, "आंखों में अंगार दहक रहे हैं।"

स्वामीजी के मुख पर क्रोध बिखर उठा और वे अपनी रक्तिम आंखों से उसे ताकते रहे, पर उस आदमी पर कोई असर नहीं हुआ था। वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ, एकदम संन्यासीजी से पूछ बैठा, "कहां स्थान है आपका बाबाजी?"

स्वामीजी ने क्रोध के आवेश में आंखें बंद कर लीं और उनके आंखें बंद करते ही वे दोनों फिर हंस पड़े। स्वामीजी करवट बदलकर लेट रहे, तो उन दोनों ने उनके सामान का निरीक्षण किया⋯एक तूंबी के साथ डलिया में बहुत-से गुलाब के फूल रखे थे, खड़ाऊं की जोड़ी थी और एक बोरे में शायद् कुछ नाज-पानी था। उस बेहूदे व्यापारी ने उनके बोरे को टटोलते हुए ऐलान किया, "इसमें स्वामीजी की मृगछाला वगैरह है।" स्वामीजी ने तड़पकर करवट बदली—"बच्चा लोग मानता नहीं है! तुमसे कुछ मतलब है।"

"आपके स्थान कहां हैं ब्रह्मचारीजी?" उसी व्यापारी ने उनकी बात अनसुनी कर पूछा। स्वामीजी के क्रोध का पारा चढ़ गया था और लगता था कि वे अभी इस दुर्मुख को उठाकर दे मारेंगे। पर वह बेहूदा व्यापारी उसी तरह निश्चिंत भाव से अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उन्हें ताक रहा था।

गाड़ी कब रुक गई और भीषण सर्दी में भी अपनी परंपरा को तोड़कर कब टिकट चेकर साहब हमारे डिब्बे में आ पहुंचे, यह पता भी नहीं चला। सबके टिकट दिखा चुकने के बाद स्वामीजी ने भी आशा के विपरीत अपना टिकट दिखाया और प्रवचन देने लगे, "हम मठों के साधू-संत हैं बच्चा! गंगोत्री

के पास हमारे स्थान हैं। हमारा कार्य है तपस्या और भगवद्-स्मरण⋯समझे बच्चा। ईश्वर तुम्हारा उद्धार करे!" अंतिम वाक्य उन्होंने शाप देने की तरह कहा और जटाओं में टिकट खोंसकर लेट गए। उस बेहूदे व्यापारी ने टिकट बाबू को आंख से कुछ इशारा किया और उन्होंने बढ़कर बोरे को टटोलते हुए पूछा, "स्वामीजी, इसमें क्या है?"

"उसमें स्वामीजी का बाघचर्म वगैरह है।" उसी व्यापारी ने बदमाशी से कहा और आंखों-आंखों में मुस्कराया, "और क्या हो सकता है, आपको शक होता है तो खोल के देख लीजिए⋯ब्रह्मचारी पुरुष हैं।" और वह खुद बोरे के मुंह पर बंधी रस्सी खोलने लगा। स्वामीजी तमककर उठे, "क्या करता है बच्चा!"

"खोलिए⋯इसे खोलिए⋯" टिकट बाबू ने रोब से कहा और उस बेहूदे व्यापारी ने पूरा बोरा खोल डाला—

एक पोटली गांजा और अफीम। दो ज़नानी धोतियां और सोने-चांदी के बारह गहने!

स्वामीजी को मय सामान के प्लेटफार्म पर उतार लिया गया और स्टेशन मास्टर तथा पुलिस के दो-तीन सिपाही भी आ गए। और स्वामीजी अपनी सफाई देने लगे, "बच्चा, यह हमको कतई नहीं मालूम, किधर से आया⋯हम साधू-संन्यासी आदमी, हमारा इससे क्या लेना-देना।" और पुलिस वाला जैसे सूंघते हुए बोला, "किस डकैती का हिस्सा मारकर आ रहे हो साधूजी।"

वही बेहूदा व्यापारी, जो नीचे उतर आया था, बोला, "कैसी बातें कर रहे हो हवलदार साहब। पहले स्वामीजी से दरयाफ़्त कीजिए⋯"

स्वामीजी जुड़ती हुई भीड़ को देखकर सिटपिटाए, पर अपने को संभालते हुए बोले, "इसमें हमारा कुछ नहीं है, भाई।"

"ये ज़नानी साड़ियां और गहने कैसे हैं?" स्टेशनमास्टर ने पूछा, तो स्वामीजी बुदबुदाए, "हमको परेशान करता है⋯बाबा लोग को सताता है। ये सब एक माताजी का है। वो दान करने के लिए हरिद्वार ले जाती हैं!"

"किधर हैं वह माताजी?" सिपाही ने कड़ककर पूछा, तो एक सोलह-सत्रह वर्षीय लड़की ज़नाने डिब्बे से उतर आई। उसे देखकर स्वामीजी माथा पकड़कर बैठ गए और थर-थर कांपने लगे। भीड़ में से एक आवाज़ आई, "यही है इनकी माताजी।" और वह बेहूदा व्यापारी उन्हें कांपते देख बोला, "अरे ब्रह्मचर्य का तेज सब चला गया⋯स्वामीजी को सर्दी लग रही है⋯कोई कंबल देना भाई।" और उसने अपना कंबल कसकर लपेट लिया। साथ वाले व्यापारी को कंधे से ठेलते हुए उसने उस लड़की की ओर इशारा किया और सी-सी करके

भूखी निगाहों से उसे ताकने लगा।

सिपाही के पूछने पर वह लड़की बताने लगी, "इस साधु ने हमें तीन सौ में ख़रीदकर आठ सौ में बेच दिया है।"

"किसके हाथ बेचा है।" सिपाही ने पूछा तो रोते हुए वह लड़की बोली, "आगरे की कोई बाईजी हैं⋯उन्हीं के हाथ। ये हमें वहीं पहुंचाने जा रहा है। बाईजी की नौकरानी डिब्बे में हमारे साथ बैठी थी, अभी उतरकर कहीं चली गई⋯"

"अरे हज़ार हम देते हैं।" उस बेहूदे व्यापारी ने बेशर्मी से कहा और सिपाही की गालियां सुनता हुआ डिब्बे में आ बैठा। उन सबको वहीं छोड़कर गाड़ी चल दी थी और वह व्यापारी कह रहा था, "हम साले किसी से नहीं डरते, हर काम खुलेआम डंके की चोट पर करते हैं⋯और वह दूसरा व्यापारी उसकी ओर ताक रहा था, उसे गाली देते हुए वह फिर बोला, "यह रात भला सफर करने की है?"

और मैं सोच रहा था—इन ब्रह्मचारियों ने वेश्याओं को जन्म दिया है और व्यभिचारियों ने इन्हें ज़िंदा रखा है। और इन ब्रह्मचारियों तथा व्यभिचारियों के कई स्तर तथा दर्जे हैं और⋯तभी उस बेहूदे व्यापारी ने मुझे फिर पुकारा, "ऐ बाबू साहब⋯कंबल ठीक से ओढ़ लीजिए, नहीं तो सर्दी खा जाएगा।" और वे दोनों अब मेरे ऊपर हंसने लगे थे। मैं लेट गया था और वह कह रहा था, "यार बड़ी गलती हो गई, हमें इसी स्टेशन पर उतर जाना चाहिए था।"

गाड़ी कुहरे से भरे ठंडे मैदानों में से गुज़र रही थी और दीवार से खुले हुए बदन का हिस्सा छूते ही ऐसा लगता था जैसे किसी ने बर्फ में दबाई हुई तलवार से वार किया हो और सुन्न पड़े शरीर से सर्द खून की धार बह-बहकर जगह-जगह भिगोती हुई चली जा रही हो।

अपने देश के लोग

वहां पर बहुते-से लोग इकट्ठे थे। सबकी गर्दनों में पट्टे पड़े हुए थे। उन पट्टों पर उनके नाम, व मर्ज़ लिखे हुए थे।

दीनदयाल	:	*उम्र 40 साल,*	**मर्ज़ :**	*ज्यादा तनख्वाह मांगता है। सलाम नहीं करता।*
सदानंद	:	*उम्र 25 साल,*	**मर्ज़ :**	*दफ्तर की स्टेशनरी चुराता है।*
इब्राहीम	:	*उम्र 30 साल,*	**मर्ज़ :**	*सही बात कहने से नहीं डरता।*
एस. सुब्रमण्यम	:	*उम्र 28 साल,*	**मर्ज़ :**	*अपने अफसर से ज़्यादा काबिल है।*
सुब्रतो घोष	:	*उम्र 26 साल,*	**मर्ज़ :**	*गलत बात नहीं मानता।*
सुबोध पकड़ासी	:	*उम्र 25 साल,*	**मर्ज़ :**	*लिख-लिख कर अफसर की शिकायत करता है।*

सभी की गर्दनों में पड़े हुए पट्टों पर नाम और तरह-तरह के मर्ज़ लिखे हुए थे। वे सब चुपचाप लाइन में खड़े हुए थे। एक सैक्शन ऑफीसरनुमा

कंपाउंडर दस-ग्यारह फाइलें पकड़े हुए हर आदमी की जांच कर रहा था। साथ ही जेब से एक-एक गोली निकालकर सबको देता जा रहा था। जो गोली खा चुके थे, वे चुपचाप खड़े थे। बाकी शोर मचा रहे थे।

कुछ-कुछ अस्पताल की तरह का वातावरण था। बहुत-से अफसर लोग डाक्टरों की तरह सफेद लंबा कोट पहने हुए फुर्ती से इधर-उधर आ-जा रहे थे। वे व्यस्त थे। उनके साथ कुछ विदेशी विशेषज्ञ भी घूम रहे थे, जो उन डाक्टरनुमा अफसरों को चलते-चलते हिदायतें और राय दे रहे थे। बरामदों में फाइलों के ढेर थे। फर्श से छत तक वे ढेर लगे हुए थे। उनकी वजह से आमदरफ्त में बड़ी कठिनाई हो रही थी। नर्सों की जगह पर बीड़ी पीते हुए चपरासी थे, जो अपने डाक्टर अफसरों को देखकर बीड़ी छुपा लेते थे, दूसरे अफसर के सामने पीते रहते थे।

वहां सरगर्मी बहुत थी। मैं जनसंपर्क अधिकारी के कमरे में घुस गया। वे पत्थर की मूर्ति की तरह चुपचाप बैठे हुए थे। मुझे देखते ही पास खड़े चपरासी ने धीरे-से उनके पलक खोल दिए और वे मुझे देखने लगे। चपरासी ने फिर धीरे-से उनका दाहिना गाल खींच दिया, जिससे उनके होंठ लंबे हो गए और उन पर मुस्कराहट नज़र आने लगी।

मैंने शालीनता से पूछा, "वह कौन-सा विभाग है और क्या काम करता है?"

जनसंपर्क अधिकारी ने चपरासी की तरफ देखा, चपरासी ने उनकी ठोड़ी के नीचे लगे एक बटन को दाबा और आवाज़ निकलने लगी, "भारत में जनतंत्र को स्थापित करने के लिए ऐसे नये आदमियों की जरूरत है, जो सिर्फ मन लगाकर अपना काम करें... अनुशासन को समझें। जो सपने न देखा करें। अपनी बुद्धि का ज्यादा इस्तेमाल न करें। खाना-कपड़ा और रहने की जगह न मांगें। बढ़ती हुई कीमतों से परेशान और नाराज़ न हों। प्रदर्शनों और आन्दोलनों में भाग न लें क्योंकि इससे प्रगति में बाधा पड़ती है। यह विभाग कर्मचारियों के सुधार के लिए खोला गया है...ताकि वे मन लगाकर सिर्फ अपना काम करें।" इतना बोलकर जनसम्पर्क अधिकारी चुप रह गए। चपरासी ने बटन बंद कर दिया था।

मैंने फिर पूछा, "लेकिन सरकारी और कुछ अच्छी गैर-सरकारी संस्थाएं भी जनता के लिए तमाम काम कर रही हैं। देश में आर्थिक समानता और नये समाज की स्थापना के लिए कदम उठा रही हैं। फिर आपका विभाग इस तरह के कर्मचारी क्यों करना चाहता है?"

इस बार चपरासी ने उनके कान के ऊपर लगे बटन को दबा दिया और वे बोलने लगे, "असल में बात यह है कि सरकारी या अच्छी गैर-सरकारी

संस्थाओं के हाथों में कुछ नहीं है। वे हाथी के दांत हैं, जिन्हें देखकर जनता खुश होती है। असली दांत मुंह के अन्दर हैं। उन्हीं के किए सब होता है⋯ये जितने समाज-सेवक और राजनीतिज्ञ हैं, सब बिके हुए हैं!⋯" वे कुछ कहने जा रहे थे कि चपरासी ने दिमाग़ का बटन बंद कर दिया। जनसंपर्क अधिकारी एकाएक चुप हो गए। चपरासी ने उनके होंठों को दबा दिया। होंठ चिपक गए और वे मेरी ओर टुकुर-टुकुर ताकते रह गए।

मैं उनके कमरे से निकल आया। बरामदे में होता हुआ भीतर पहुंचा। वहां बहुत-से अफ़सरनुमा डाक्टर एक आपरेशन की मेज़ के चारों ओर खड़े थे। कुछ विदेशी विशेषज्ञ भी थे। एक कोने में फाइलों का अंबार लगा हुआ था और एक क्लर्क कुछ लिखने में चुपचाप व्यस्त था। मेज़ के पास ही खुकरी लिए हुए दो सर्जन खड़े थे। हाथों में दस्ताने थे।

तभी कोने वाले क्लर्क ने आवाज़ लगाई—"दीनदयाल, उम्र 40 साल, मर्ज़—ज्यादा तनख्वाह मांगता है। सलाम नहीं करता!"

दीनदयाल अंदर आया। वह घबराया हुआ था। चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। जैसे ही वह भीतर घुसा, उन अफ़सरनुमा डाक्टरों ने उसे पकड़ लिया। उसने सबको देखा—कुछ अफ़सरों को उसने पहचाना। तभी खकरी लेकर खड़े हुए दोनों सर्जन आगे बढ़े।

एक सर्जन ने उसे टटोला और दूसरे से कहा, "पहले इसकी परछाईं निकाल लीजिए!"

सर्जन नंबर दो ने पास की मेज़ से कोई दवा उठाकर दीनदयाल को सुंघाई और उसके मुंह में हाथ डालकर एक आत्मानुमा चीज़ खींच ली। उस चीज़ को मेज़ की बगलवाली प्लेट में रख दिया गया।

पहले सर्जन ने इशारा किया और दूसरे सर्जन ने खुकरी के एक झटके से दीनदयाल की खोपड़ी की हड्डी उतार दी। खोपड़ी की हड्डी उतरते ही एक छोटी-सी डायरी निकलकर तकिए पर गिर पड़ी। पास खड़े अफ़सरनुमा डाक्टरों ने दौड़कर दीनदयाल की खोपड़ी में झांका—वह ख़ाली थी। एक डाक्टर ने डायरी उठाकर देखनी शुरू की। उसमें बहुत-सी बातें नोट थीं—

जितना कर्ज़ा उसने लिया था, वह ब्यौरे से उस पर लिखा हुआ था। डाक्टरों ने हिसाब जोड़ा तो कर्ज़ा पांच हज़ार निकला। उसी डायरी में वे दिन भी टंके हुए थे, जब-जब उसकी तनख्वाह में बढ़ोतरी हुई थी⋯डाक्टरों ने हिसाब लगाया, बाईस वर्ष की नौकरी में उसका कुल एक सौ दस रुपया बढ़ा था। पचासी रुपये से उसने नौकरी शुरू की थी और अब एक सौ पचानवे पा रहा था।

इसके अलावा डायरी में वे रकमें भी नोट थीं, जो वह अपने बेटे को पढ़ाने के लिए हर महीने भेजता रहा था और वक्त-वक्त पर बाढ़ सहायता कोष और सुरक्षा कोष में उसने दी थीं। उसमें उन घरवालों और अस्पतालों के नाम भी दर्ज थे, जिनमें उनकी मृत्युएं हुई थीं या जन्म हुए थे।

अभी डाक्टर लोग वह डायरी पढ़ ही रहे थे कि सर्जन ने फिर इशारा किया। उस दूसरे सर्जन ने खुकरी डाल-डालकर उसकी दोनों आंखें काटीं। पुतलियां निकालीं तो उनके साथ कैमरे की रील की तरह लंबी रीलें निकलती चली आईं। दोनों सर्जन मिलकर खींचते रहे, पर वे रीलें खत्म ही नहीं होती थीं। अंत में हारकर उन्होंने खुकरी से वे रीलें काट लीं।

उन रीलों पर हज़ारों तस्वीरें थीं···लेकिन बहुत अजीब! उनमें कुछ तस्वीरें मकानों की थीं। अच्छे साफ-सुथरे मकानों की। कुछ तस्वीरों में सजी हुई दुकानों के अक्स थे। जिनके शोकेसेज़ में सुन्दर-सुन्दर साड़ियां लटक रही थीं। कुछ तस्वीरें कमीज़ों, पैंटों और कोटों की थीं। जूतों की थीं। अच्छे होटलों की थीं। सेहतमंद बच्चों और उनके कपड़ों की थीं। खिलौनों और राशन की थीं। बनारस और हरिद्वार की थीं। मंदिरों और तीर्थ-स्थानों की थीं। दवाइयों और फलों की थीं। बच्चों की रंग-बिरंगी पोशाकों और खिलौनों की थीं।

उन तस्वीरों को देखते-देखते सभी लोग ऊब उठे। उन्होंने वे रीलें लपेटकर रख दीं। फिर सर्जन ने इशारा किया और दूसरे सर्जन ने खुकरी मारकर उसके पेट को चीर लिया—उसके खुलते ही धुएं का एक गुब्बार-सा निकला और चारों तरफ बीड़ी की गंध फैल गई। धुआं जब साफ हुआ तो पेट से एक राशन कार्ड और किरानी की कुछ पर्चियां निकल आईं। बीड़ी के कुछ टुकड़े और चाय की पत्तियां भी निकलीं।

उन सब चीज़ों को निकालकर प्लेट में रख दिया गया। एक क्लर्क वहीं खड़ा-खड़ा उनकी सूची बनाता जा रहा था।

इसके बाद पहले सर्जन ने इशारा किया और दूसरे सर्जन ने उसका सीना चाक किया। दिल के आस-पास का हिस्सा उसने काट लिया था। उन्हें उम्मीद थी कि एक धड़कता हुआ दिल वहां होगा···पर कुछ नज़र नहीं आ रहा था। झांककर दोनों सर्जनों ने देखा तो वहां जाला लगा हुआ नज़र आया। सर्जन ने खुकरी की नोक से जाले की एक पर्त हटाई। जाला फिर भी लगा हुआ था। खुकरी की नोक से उसने पूरा जाला साफ किया तो उसके साथ एक ज़िन्दा मकड़ी भी निकली।

दोनों सर्जनों ने मिलकर दीनदयाल की खोपड़ी, आंखें, पेट और दिलवाली जगह अच्छी तरह साफ कर दी। साफ करने के बाद उनमें पाउडर छिड़का।

तभी एक प्लेट में कुछ चीज़ें लिए हुए एक कंपाउंडर हाज़िर हुआ। दूसरा सर्जन एक ओर हट गया। पहले वाले सर्जन ने कंपाउंडर की प्लेट से फाइलों का एक छोटा-सा चुना हुआ गट्ठर उठाया और उसकी खोपड़ी में रखकर कटोरेदार हड्डी चढ़ा दी।

उसके बाद प्लेट से उसने दीनदयाल के सब अफसरों की तस्वीरें उठाईं और उन्हें लपेट-लपेटकर आंखों के गड़हों में भर दिया। आंखों के कोटर भर गए, तो उसने बहुत एहतियात से पुतलियां जड़ दीं।

फिर प्लेट से उसने अखबारों की वे कतरनें उठाईं, जिनमें महंगाई भत्ता बढ़ने और कीमतों के कम होने की खबरें छपी थीं···उन कतरनों को उसने एक आलपीन से नत्थी किया और पेट में रखकर सिलाई कर दी।

इसके बाद उसने पत्थर का एक छोटा-सा टुकड़ा उठाया और दिल की जगह रखकर सीने पर भी टांके लगा दिए। और अंत में उसने वह परछाईंनुमा आत्मा उठाई और दीनदयाल का मुंह खोलकर उसे भीतर घुसेड़ दिया। उसे मेज़ से उठाने के पहले उन्होंने जल्दी से दो टांके उसकी ज़ुबान में भी लगा दिए और पीठ थपथपाकर उसे बैठा दिया।

दीनदयाल चुस्ती से खड़ा हो गया। उसने झुक-झुककर अपने सब अफसरों को सलाम किया और बाहर निकल गया। उसके जाते ही क्लर्क ने आवाज लगाई—"सदानंद ···उम्र पच्चीस साल···मर्ज़···

नया किसान

कुंवरजी उस समय अपनी होने वाली पत्नियों का ज़िक्र कर रहे थे। पुराने ज़मींदार या सामंती घरानों का जैसा चलन रहा है, ठीक वैसे ही गुण और ऐब कुंवरजी में भी थे। परंपरानुसार कुंवरजी को हमेशा एक ऐसे दोस्त की ज़रूरत रहती थी जो उनकी बातें ध्यान से सुने और तर्क न करे। क्योंकि तर्क के तूफान के सामने उनकी ख़्याली नाव के पाल फट जाते थे और कश्ती चकराकर झूठ के भंवर में डूब जाती थी। उन्हें सिर्फ ऐसा दोस्त चाहिए था जो 'अच्छा' और 'फिर क्या हुआ' के साथ रुचि से दास्तान सुनता जाए। यही कराण था कि थोड़े समझदार दोस्त उनके कभी अपने न हो पाए। रोज़ नहीं तो चौथे-पांचवें दिन उनके साथी बदल जाते थे।

कुंवरजी शहर के पुराने ज़मींदार घराने के सबसे बड़े लड़के थे और कपड़े बदल-बदलकर दिन-भर बाज़ार में इधर-उधर घूमा करते थे। मोटर वालों से उनकी ख़ास दोस्ती थी, क्योंकि ड्राइवर उन्हें ज़िले-भर की गाड़ियों, मोटर साइकिलों और बंदूकों के ब्योरे बताया करते थे।

उस समय की बात कुछ ऐसी ही उखड़ी-उखड़ी चल रही थी जैसी हमेशा चला करती है। शाहआलम ड्राइवर ने उनकी बात कतरकर एकदम बताया, "पाण्डेजी शेवरले गाड़ी तीन हजार में बिक रही है। इंजन बहुत मज़बूत है, बस बॉडी खराब है।"

"हज़ार में खरीदकर साली को रंगवा के पांच हज़ार में चलता किया जाए! क्यों?" कुंवरजी ने उसकी बात में बात मिलाई और आगे बढ़ गए, "तो भरतपुर की जिस लड़की के बारे में मैंने बताया वह ज़रा अपटूडेट है···नाक-नक्शा तो ख़ैर कहना ही क्या? अब बताइए, उसे इस टुच्चे शहर में लाकर क्या करूं?"

"अरे साहब, शादी करके किसी बड़े शहर में बस जाइए।" चैतू ने कहा, तो कुंवरजी हंस पड़े, "फिर यहां कौन देखेगा? आपकी दया से अभी इतना है कि चार पीढ़ियां आराम से खाएंगी। पिताजी का क्या ठिकाना आज मरे कल दूसरा दिन। रियासत तो दुधार गऊ की तरह है···जितना खिलाइए-पिलाइए उतना दुह लीजिए···हां, तो दूसरी की बात पानीपत से चल रही है। बाप उसके जज हैं, सात भाइयों में अकेली बहिन है। तो साहब मैं देखने पहुंचा तो वह खातिर, वह खातिर कि क्या बताऊं। सुबह बकरा कट रहा है तो दोपहर में तीतर आ रहा है और शाम को मुर्गा। गुलाबजल से स्नान, मख़मल का तौलिया और इत्र में बसे हुए कपड़े। कुछ न पूछिए···"

"तो आपको पहनने के लिए कपड़े भी उन्होंने दिए थे।" शाहआलम ने पूछा तो कुंवरजी को थोड़ा नागवार गुज़रा, बोले, "कपड़े मेरे थे साहब। कार से उतरते ही मेरा बक्सा भीतर चला गया, बस इत्र में बसा दिया गया कपड़ों को··· शाम होते ही कैडलक गाड़ी, ड्राइवर और लड़की मुझे दे दी गई···" कुंवरजी थूक निगलकर मुस्कराए—"अब साहब खूबसूरती का क्या बयान करूं···चुस्त बदन, सांचे में ढले हुए अंग, सुराहीदार गर्दन, अनारदाने से दांत और हिरनी-सी निगाहें! बस कुछ न पूछिए···और ड्राइवर भी एक नंबर का समझदार!" कहकर उन्होंने शाहआलम की ओर देखा। शाहआलम कुछ इस तरह मुस्कराया जैसे वह ड्राइवर उसी का शागिर्द रह चुका हो। एकदम कुछ याद करते हुए बोला, "डिप्टी साहब की डबल बोर रायफिल तो आपने देखी होगी।"

"वाह साहब, वाह, अचूक निशाना था डिप्टी साहब का! और साहब उन निगाहों का निशाना भी क्या था! कैडलक गाड़ी, समझदार ड्राइवर और काफिर निगाहें!···डबल बोर रायफिल!"

इतने में ही गुलज़ारी लाल मुख़्तार आ गए। कुंवरजी ने उनके बुढ़ापे का ख़्याल करते हुए पहले तो जैरामजी की और फिर कुर्सी पर उनके बैठने का इंतज़ार करने लगे। मुख़्तार साहब ने बैठते हुए पूछा, "कहो भाई कुंवर, बंगलोर टेलीफोन कंपनी के शेयरों का क्या हुआ?"

कुंवरजी ने कड़वेपन को पीते हुए कहा, "बाबूजी की समझ में बात ही नहीं आती। कुछ नहीं हो, चार-छः हज़ार सालाना की आमदनी बंध जाती।"

पोपले मुंह में पान को चलाते हुए मुख़्तार साहब ने कहा, "वो तो है ही···वो तो है ही।" उनका रुख देखकर कुंवरजी ने बात चालू की, "मुख़्तार साहब, आप तो पके हुए आदमी हैं, पांच शादियां कर चुके हैं! इस बारे में मुझे कुछ बताइए···हैं, हैं···"

"अरे ज़रूर भाई ज़रूर! मुझे साथ ले चलो, लड़कियां देखकर ऐसी चुन

दूंगा कि बस!···" कहकर मुख़्तार साहब ने खूब जल्दी-जल्दी पान चबाना शुरू कर दिया, "और देखो कुंवर, मुझसे कोई खतरा भी नहीं है!" इतना कहते हुए उनके मुंह से फुव्वारा-सा छूट पड़ा। घर के चलन के मुताबिक आदर तो सबका होता था पर बातों में बड़प्पन का ख्याल सिर्फ हैसियत से ही होता था इसीलिए कुंवर जी बुजुर्गों से भी ऐसी-वैसी बात करने में हिचकते नहीं थे··· आखिर ठाकुर घराने की खून उनकी रगों में था।

कुंवरजी का घराना बहुत पुराना और शहर में अपनी तरह का अकेला ही था। उनकी बैठक बाबा साहब के ज़माने से सजी हुई थी। उसमें पहुंचकर हमेशा ऐसा लगता था जैसे किसी बहुत पुराने महल में आ गए हों जो सदियों से बंद पड़ा हो। लंबी-चौड़ी बैठक की वीरानी और रोशनदानों पर खामोश बैठे हुए कबूतरों से उसकी निर्जनता और भी बढ़ जाती थी। हर ओर आठ-आठ दरवाज़े थे, जिनमें रंगीन शीशे जड़े हुए थे—उन दरवाज़ों के पार ऐसे कमरों का बोध होता था, जिनमें शायद लाशें भरी हुई थीं और मकड़ियों के जालों ने उन पर एक जीना पर्दा डाल रखा था··· बैठक में अजीब घुटी-घुटी सीलन-भरी महक व्याप्त रहती थी। दीवारों पर बने हुए शौर्य-शृंगार के चित्र। छतों से लटकते हुए झाड़-फानूस और पुराने जूतों की तरह बेरंग और ऐंठा हुआ फर्नीचर! अंग्रेज़ी ज़माने की तलवारें और सनदें! जार्ज पंचम का बड़ा-सा चित्र और अलमारियों के खानों में बाबा आदम के ज़माने की रखी हुई फाइलें। बिछे हुए पुराने कालीन और दीवान पर सर-कटे मुर्दे की तरह लुढ़का हुआ मसनद।

और अब घर में शान-शौकत के नाम पर दो पुराने नौकर हैं, जिनकी वफादारी की कहानियां मशहूर हैं और उजड़े हुए लान में एक टूटी हुई कार पड़ी है, जिस पर बैठ-बैठकर बच्चे अपने पुराने घर की शान-शौकत का अहसास करते हैं। ज़मींदारियां ख़त्म होते ही इस कोठी की दीवारें पुताई के लिए मुहताज रहने लगीं और मरम्मत के अभाव में पलस्तर उखड़ने लगा, पर शहर में अभी भी मुँह देखी चाटुकारी और लिहाज का बोलबाला है। लेकिन पीठ पीछे की बातें चलती ही हैं, "बड़े घरों के लड़के खराब ही निकलते हैं··· कुंवरजी को ही देख लो, है किसी लायक! गधे का गोबर है—न लीपने का न जलाने का!"

और ऐसी बात नहीं कि अपने निकम्मेपन और व्यर्थता का बोध कुंवर जी को न हो। इतना तो वह समझते ही हैं। कुँवरजी को इस बात का बहुत ग़म है कि दुनिया में शांति छाई हुई है क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र तो युद्धस्थल ही है। अपनी लंबी-चौड़ी देह को शान से फूलाते हुए कुंवरजी कहा करते हैं, "लड़ाई शुरू हो तो मेरे लिए कमीशन धरा हुआ है।··· मेजर बनते क्या देर लगती है? क्या ज़माना आ गया है साहब! हम राजपूतों की तो तबाही हो गई··· लानत है

जो खाट पर मरूँ⋯ऐसा हुआ तो खुद गोली मार लूँगा साहब⋯फिर कुंवरजी बड़े गर्व के साथ कहते—"पिताजी ने अपनी मौत के लिए बन्दूक चुनकर रख दी है⋯और मुझे हुक्म दिया है कि जब भी उनकी आखिरी घड़ियाँ हों, मैं उन्हें खाट से उठाकर वीरगति प्राप्त कराऊं⋯इसीलिए कहीं बाहर नहीं आ-जा पाता। पाता नहीं किस दिन जरूरत पड़ जाए।" और उसी बन्दूक से कुंवरजी कभी-कभी जंगली कबूतरों का शिकार भी करते हैं। इधर पिछले तीन-चार सालों से कुंवरजी का वह पुराना दमखम लुप्त हो गया है और वे शहर से कभी-कभी एकाध महीने के लिए गुम हो जाते हैं। एक बार जब वे दो-तीन महीने बाद लौटकर आए तो उन्होंने अपने जाग्रत् भाग्य का किस्सा सुनाया—"हिमालय की तराई में मेरे फूफाजी की बहुत बड़ी स्टेट है⋯मरते वक्त वो सब मेरे नाम कर गए, उसी जायदाद की देखभाल के लिए जाना पड़ता है साहब। चार मोटरें हैं, नैनीताल में दो होटल हैं, हजारों एकड़ के फार्म हैं, पाँच ट्यूब वैल हैं और कोठी क्या, उसे तो किला समझिए⋯पर साहब ऐसी जागीर का मुकुट बांधकर क्या करूँ जिसमें जान से हाथ धोना पड़े! क्यों साहब गलत कह रहा हूँ?"

कुंवरजी का यह किस्सा कुछ दिनों चलता रहा। इसके बाद एकाएक उनमें तब्दीली दिखाई दी—"जैसे एक ही जगह जल में खड़े-खड़े नाव के पाल आपसे-आप फटने लगते हैं और सूराखों से पानी रिसने लगता है उसी तरह कुंवरजी की जिन्दगी के पाल फटते नज़र आ रहे थे⋯दाढ़ी बढ़ हुई, जूतों में सिलाई और टुकड़े लगे हुए, चेहरा बेरौनक और एड़ियाँ कटी हुईं। कोठी पर वे कभी दरियाँ झाड़ते हुए और कभी ऊनी कपड़ों को धूप दिखाते हुए नजर आते! उनका चेहरा उतरा-उतरा रहता और वे अब बहुत कम बाजार की महफ़िलों में दिखाई पड़ते। एक बार दिखाई दिए तो दवा की शीशियाँ लिए हुए थे। पर चाल में वही अकड़ थी। उसके बाद वे कुछ दिनों के लिए नज़र से ओझल हो गए⋯लौटे तो बड़ी शान-शौकत से। आते ही बाजार की महफिलें फिर गर्म हुईं और कुंवरजी हर-एक से मिलने के लिए उतावले दिखाई पड़ते थे। बात असल में यह थी कि उनके बयान के मुताबिक उन्होंने कानपुर में एक शानदार होटल चालू किया था जिसमें फिलहाल तीस रुपए रोज की बचत हो रही थी—"और साहब क्या जिन्दगी है? एक-से-एक ठाट-बाट के लोग अपनी बीवियों के साथ आते हैं, खाते-पीते क्या हैं⋯मौज के लिए आए और चले गए। पैसा तो बहता है, जो थाम सके वह थामे!" यह उन्होंने शाहआलम ड्राइवर से कहा था और उसे विश्वास दिलाया था कि राज्य के बड़े-बड़े मंत्रियों और अफसरों से उनकी बेहद जान-पहचान हो गई है, वह चाहे तो प्राइवेट कैरियर का लाइसंस खड़े-खड़े बन सकता है या लोहे और सीमेंट का परमिट फौरन मिल सकता है!

शाहआलम ने प्रशंसा-भरी नजरों से उन्हें देखा और बड़े अदब से कहा, "कुंवर साहब, इतना रुपया मेरे पास कहाँ जो प्राइवेट कैरियर खरीद सकूं या लोहे और सीमेंट का व्यापार कर सकूँ? आप कुछ मदद करें तो मुमकिन हो सकता है!"

"साहब, चार पैसे की मदद हम दे सकते हैं पर खुद यह व्यापार करना मेरे बस का नहीं!" कुंवरजी ने कहा तो शाहआलम ने बड़े शाइस्ता ढंग से अर्ज़ किया, "कुंवर साहब, ज़बानदारी के लिए मुआफी चाहूँगा, पर यह होटल वगैरह चलाना आप जैसे रईसों को फबता नहीं!"

कुंवरजी एक मिनट सोचने के लिए मजबूर हो गए! उन्हें लगा जैसे सचमुच यह काम उनकी इज़्ज़त के खिलाफ है। धीरे से बोले, "तो क्या करूँ साहब? कोई धंधा ऐसा नज़र नहीं आता जिसमें आमदनी भी हो और इज़्ज़त भी…"

सुनकर शाहआलम ने सुझाया, "आप लोहे और सीमेंट के परमिट हासिल करके पुख़्ता व्यापार कीजिए। आराम से घर में बैठिए। दो नौकर रखिए और काम करवाइए। होटल चलाना तो नीचों और बदमाशों का पेशा है साहब…मैं अपने जुमले के लिए मुआफ़ी चाहूँगा…ज़रा गौर कीजिए हुज़ूर…"

कुंवरजी ने उनकी बात पर गौर करके लोहे और सीमेंट के व्यापार को ही अपनी इज़्ज़त और घराने के अनुकूल पाया। रियासतों के पुराने वकील साहब मिलने आए तो बिगड़ते हुए ज़माने की बातें चल निकलीं, "कुंवरजी ज़माना बहुत खराब है और दिन-ब-दिन बिगड़ता ही जा रहा है…ईश्वर की दया से आपके यहाँ सब कुछ है फिर भी कल किसने देखा है…रियासत का भी कोई ठिकाना नहीं, कल कानून बन जाएगा कि एक से ज्यादा इमारत कोई नहीं रख सकता…आखिर इतनी लम्बी ज़िन्दगी का छोर किसने देखा है। आप कुछ काम-वाम शुरू कीजिए…"

धीरे से मुस्कराकर कुंवरजी ने बताया, "वकील साहब! मैं निगाह खोलकर चल रहा हूँ। जो बात आपने कही, वह मेरे दिमाग में बहुत पहले से थी। इसीलिए मैंने लोहे और सीमेंट के परमिटों की दरख़्वास्त दे रखी है, बस एक बार लखनऊ गया कि परमिट आया। यहीं 'कुंवर आयरन एण्ड सीमेंट डिपो' खुलेगा वकील साहब। पेशा वह करें जिसमें इज़्ज़त हो। क्यों साहब गलत कह रहा हूँ!"

लेकिन वकील साहब को बात कुछ जंची नहीं, धीरे-से बोले, "यों करने को कुछ भी किया जा सकता है पर कुंवरजी इसमें वह बात नहीं है जो रईसों की रईसी भी बनाए रखे और पैसा भी दे…" फिर कुछ सोचकर बोले, "कानपुर इतना पास है, आप थोक कपड़े की कोठी क्यों नहीं खोल लेते? नाम पर नाम

और पैसे का पैसा··· दूसरे इस व्यापार में ऐसों से लेन-देन चलेगा जो और कुछ नहीं, सफेदपोश तो हैं ही··· कायदे के आदमियों से सम्बन्ध बनेगा और बाद में कपड़ा छपाई का एक कारखाना चालू कर दीजिए··· और दस आदमियों का पेट भरेगा!"

वकील साहब की यह बात उन्हें इतनी जंची कि थोक कपड़े की कोठी वाले सेठजी से मिलते ही उनसे न रहा गया। न चाहते हुए भी कह ही गए, "सेठजी, अब मैंने तय किया है कि कुछ काम शुरू करूँ! पड़े-पड़े अच्छा नहीं लगता···"

"अरे कुंवरजी, आपको किस चीज की कमी है? शगल के लिए शुरू करें तो कुछ भी कर देखिए···" सेठजी ने अपना चश्मा साफ करते हुए कहा। कुंवरजी को उनकी बात कहीं बहुत भीतर सहला गई थी, पर अपने को तुच्छ जताते हुए बड़ी शालीनता से बोले, "कमी तो नहीं, पर सेठजी ज़माना देखकर सोचने के लिए मज़बूर होना पड़ता है। कल तक ज़मीदारियां थीं, आज पारे की तरह हकूमत हथेली से दुरक गई··· मैंने तय किया है कि कपड़े के व्यापार में हाथ लगाया जाए और छपाई का एक कारखाना साथ-साथ खोला जाए···"

"आप भी किस हिमाकत में पड़ने जा रहे हैं कुंवरजी! यही पापड़ बेल रहा हूँ। भगवान का नाम लेकर कान पकड़िए इस व्यापार से ···· मैं तो भुगत रहा हूँ··· बस समझिए कि गर्दन फँसी हुई है इसीलिए यह सब ढो रहा हूँ। मेरा रुपया न फँसा होता तो कोयले की ठेकेदारी कर लेता। इस रोजगार में दुहरी मार है। उधार माल न दीजिए तो घर में गांठें सड़ाइए और दिसावर में उधार दे दीजिए तो किस्मत को रोइए। एक पैसा वसूल नहीं होता। आमदनी धेले की नहीं और इन्कम टैक्स हज़ारों का! जो गांठ में हो सब इसमें झोंककर एक दिन लंगोटी लगाकर निकल जाइए—बस! कोई ठिकाना नहीं बाजार का···"

"आप तो मेरी हिम्मत तोड़ रहे हैं!" कुंवरजी ने चालाकी से कहा। "मैं आपको दुरुस्त राय दे रहा हूँ कुंवरजी! खुद हाथ जलाए बैठा हूँ। इससे अच्छा तो यह है कि आप वनस्पति घी की एजेन्सी लीजिए और रुपया बटोरिए··· आखिर आदमी घी के बगैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। रोज़ाना ज़रूरत की चीज़ है और देशी घी तो सपना होता जा रहा है! हज़ार पाने वाला भी इसे इस्तेमाल करता है और दस कमाने वाला भी चार आने का घी ज़रूर ले जाता है। अपने शहर में कोई एजेन्सी है भी नहीं··· यहीं से माल सप्लाई कीजिए और आस-पास के जिलों को भी घेर लीजिए! गाँव वाला भी अब यही घी माँगता है! हवा का रूख देखिए कुंवरजी!"

"बात तो आपकी किसी हद तक ठीक है पर···" कुंवरजी कह ही रहे थे

कि सेठजी होंठ निकालकर बोले, "कपड़े की कोठी ही अगर जंच गई है तो आइए सौदा कर लें! आप लाख के अस्सी हज़ार दीजिए बीस हज़ार का घाटा ही सही···मैं तो भाई इससे पिंड छुड़ाना चाहता हूँ!"

सेठजी की बात कुंवरजी के ज़हन में समा गई। मालूम करने के लिए पूछा, "वनस्पति घी की एजेन्सी आसानी से मिल सकती है?"

"अरे कुंवरजी, अब आप इस तरह कहेंगे! यह तो खुला हुआ व्यापार है और फिर आप जैसा मोअज़्ज़िज़ आदमी बीस हज़ार लगाकर दो लाख का माल भर सकता है!"

दो लाख के माल वाली बात कुंवरजी के दिमाग में टकराती रही···लोग उन्हें मोअज़्ज़िज़ आदमी समझते हैं! इतनी साख है उनके घराने की। उनका मन झूम उठा। जिस बन्दूक से वे पिताजी को वीरगति प्राप्त कराने वाले थे, उससे उन्होंने उसी दिन एक जंगली कबूतर का शिकार किया और शाम के खाने पर अपने अजीज दोस्त मकरंदसिंह को बुलाया। खाते-खाते कुंवरजी ने बड़ी दरियादिली से कहा, "भाई मकरंद यार, तुम भी क्या झख मार रहे हो तहसील की नौकरी में···हिम्मत करो तो ऊंचे पैमाने पर कोई बिजनेस शुरू किया जाए!"

"क्यों, कुछ सोचा है?" मकरंद ने धीरे से मुस्कराते हुए कहा, "आखिर यह रईसी का खाली ढोल कब तक पीटोगे!"

बात कुंवरजी के पार हो गई, पर उसकी सच्चाई ने उनका मुँह बंद कर दिया, पर जैसे इज़्ज़त बचाते हुए बोले, "खैर, अभी मेरी ज़िन्दगी तक तो कोई फिक्र नहीं है पर इस घराने के होने वाले बच्चे इस शान-शौकत को क्या जान पाएँगे। हम भोग रहे हैं तो हमारा फ़र्ज़ है कि वे भी जानें कि किस घर में जनमे थे···"

"यार तू बड़ा समझदार हो गया है!" मकरंद बोला तो कुंवरजी अपनी कीली पर आ गए। हाथ रोककर कुछ चिंता से बोले, "सच पूछो तो अब ढोल-ही-ढोल है···क्या पता था कि यह ज़माना भी आएगा? पढ़-लिख लेते तो हज़ार रास्ते थे। अब थोड़ा-बहुत जो भी है वह सिर्फ रुपए का ज़ोर है···वह भी साला खिसका जा रहा है। आमदनी के ज़रिए सब बंद हैं पर खर्चे चौगुने हैं! और अब इस तरह घर में पड़े रहना बहुत सालता है!"

"तो क्या करने का विचार है, कुछ सोचा है?" मकरंद के पूछते ही कुंवरजी ने पूरा प्लान सामने पेश कर दिया "···वनस्पति घी का मार्केट दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। मैं सोचता हूँ अपने ज़िले की एजेन्सी ले लूँ। घर बैठे माल सप्लाई करूँ।"

"सूझ तो अच्छी है! पता करो तो कुछ तय किया जाए!" मकरंद बोला।

"मैंने सब पता कर लिया है! समझो पूरी बात कर ली है। खैर यार, घर में पाई नहीं है पर लोगों पर रौब इतना है कि साले लखपति समझ रहे हैं। बीस हजार लगाकर दो लाख का माल मिल जाएगा। अभी मैदान में नहीं उतरे पर साख इतनी ज़बरदस्त है!" कुंवरजी का माथा गर्व से उठता जा रहा था और उनके सीने में उबाल आ रहा था।

"लेकिन बीस हज़ार लगाने के लिए है!" मकरंद ने कहा तो उनके उफान पर ठंडा छींटा पड़ गया। और चबलाकर बोले,"यह मसला तो अहम है! क्या मुसीबत है यार!⋯लुटे हुए ज़मींदारों को बड़ी रकम कोई उधार भी नहीं देता⋯"

"तो कोई छोटा काम शुरू करो, ऐसा काम जिसमें हींग लगे न फिटकरी और रंग चोखा आए!⋯ तुम्हारी ज़मींदारी में इतने ऊसर पड़े हैं, ईटों का भट्ठा बड़ी आसानी से शुरू किया जा सकता है। रुपया भी नहीं लगेगा और ऊसर पड़ी घर की ज़मीन का इस्तेमाल भी हो जाएगा⋯मिट्टी सोना बन जाएगी, सोना! हमारे नायब साहब ने रिटायर होकर भट्ठा खोला, आज लखपती बने बैठे हैं⋯और फिर तुम्हारे पास बेकार ज़मीनों की भला क्या कमी?" मकरंद ने कहा तो इससे कुंवरजी की आँखों में चमक आ गई। इस तरह ध्यान नहीं गया था। घर में लक्ष्मी बैठी है और हम बाहर खोज रहे हैं! "हाँ, आसानी-से कितनी पूँजी से यह कारोबार चालू हो सकता है?"

"ज़्यादा-से-ज़्यादा एक हज़ार रुपया!"

बस! एक हज़ार! इससे सस्ता कारबार और क्या होगा? बस बात बन गई थी। दूसरे दिन इत्तफाक से गाँव के परिचित मुखिया घूम पड़े तो कुंवरजी ने सामंती अंदाज से उन्हें सूचित किया—"गाँव में ईंटों का एक भट्ठा खुलवाए दे रहा हूँ! बेकार पड़ी ज़मीन इस्तेमाल में आ जाएगी! क्यों, ठीक है न!"

"सरकार जो मर्जी हो आपकी। बहुत अच्छी बात सोची आपने!" घाघ मुखिया ने यह जमाई। हम तो आपकी रियाया हैं सरकार। गवरमिंट चाहे जो करे पर आपके दादा-परदादा और बड़े मालिक के अहसान बहुत हैं हम गरीबों पर⋯आप लोगों ने तो आना ही छोड़ दिया उधर⋯इस बहाने सरकार के दर्शन होते रहेंगे।"

"अब क्या करें आके मुखिया! अपनी बेइज़्ज़ती कराएँ⋯अच्छा भी नहीं लगता" कुंवरजी ने बड़ी उदासी से कहा तो मुखिया ने बात काट दी, "आप नाता तोड़ लें सरकार, हम भी तो हुकुम के ताबेदार हैं। इतनी ज़मीनें पड़ी हैं⋯सरकार चाहे तो भट्ठा क्या दस फारम खोल लें⋯काम करने के लिए हम सब मौजूद हैं। किसी की मजाल है जो मना कर जाए सरकार⋯"

कुंवरजी के ज़हन में बात कौंध गई। बोले, "ज़मीन से इतना पुराना नाता

है, उसकी सेवा करके तुम लोगों का पेट भरते रहे और अपना पालते रहे...तुम समझते हो गाँव से कटकर हमें कम मलाल हुआ है...पर करें क्या?"

"सरकार के लिए अब भी सब कुछ हो सकता है।" मुखिया कह रहा था, आप फारम खोल के राजा की तरह बैठें सरकार। बड़े-बड़े ज़मींदारों ने फारम खोले हैं...टिरक्टर लाए हैं...फटफटिया गाड़ी की तरह आराम से टिरक्टर पर बैठे किसनई कर रहे...आप तो पढ़े-लिखे आदमी हैं सरकार...जहाँ पचास मन पैदा होता है वहाँ चार सौ मन उपजेगा।..."

और यह बातें सुन-सुनकर कुंवरजी का मन नाच-नाच उठता था। बोले, "तो खोलूँ फार्म!"

"अरे सरकार, अब आप हमसे पूछेंगे! हुक्म दें सो किया जाए...आप लोग ज़मीन के नहीं हमारे मालिक थे! जो कहें सरकार!" मुखिया ने कहा और एक बाग का एक सूखा पेड़ काट लेने की इजाज़त लेकर चला गया।

इसके बाद तीन महीने तक कुंवर जी गुम रहे! वे कहाँ चले गए, किसी को खबर नहीं थी...एक दिन अकस्मात् वे तेजी से डाकखाने की ओर जाते हुए दिखाई दिए तो दोस्तों ने रोक लिया, "कहो यार कुंवर, दिखाई ही नहीं पड़ते...किधर जा रहे हो आजकल...सुना बीवी चुनने गए थे।"

कुंवरजी का चेहरा खिल गया, अपनी ख़ाकी पतलून को पेट पर सरकाते हुए बोले, "अब बीवी की ज़रूरत नहीं।"

"अरे क्या हुआ? एकदम बीवी की ज़रूरत ख़त्म हो गई?" सत्यपाल ने मज़ाक किया तो कुंवरजी बड़ी गंभीरता से बोले, "गाँव में फार्म खोल लिया है...अब तो किसान हो गए भाई...अच्छा ज़रा डाकखाने तक होता आऊं, "कहकर वे चलने को हुए तो सत्यपाल ने आस्तीन पकड़ ली, "फिर हो लेना डाकखाने..."

"नहीं भाई, कुछ बड़ी जरूरी किताबों वी. पी. आई. है...एग्रीकलचर की किताबें मंगवाई थीं..."

कुंवरजी ने रुकते हुए आँख मारकर कहा, "कभी आओ उधर पिकनिक पर। ऐसी नायाब जगह पर फार्म है कि बस! आम के बगीचे में एक कमरा बनवाया है, वहीं ट्रेक्टर का गैरेज है और सामने तालाब। सिंघाड़े की बेल तो ऐसी फैली है कि क्या बताऊँ यार, कभी आओ खाने..."

कुंवरजी ने साँस ली और बोले, "और छोकरियों की कमी नहीं...तालाब पर एक-न-एक मंडराती ही रहती है... ।"

"वाह जी वाह! यह रही असली बात!" शर्मा ने कहा तो कुंवरजी ने आँखें झपकाईं, बोले, "यार गाँव की जिन्दगी भी क्या है? स्वर्ग समझो...अभी

फार्म खोला है, एक गौशाला और खोलूँगा··· भूसे-चारे की कमी नहीं, इतना धान होता है कि सौ जानवर पल जाएँ!"

कुंवरजी की बात सुनकर सत्यपाल ने आँखें टेढ़ी कीं और कुछ सोचकर पूछा, "ट्रेक्टर खुद चलाते हो!"

"और क्या?" रोज़ सुबह चार बजे उठकर बिला नागा ट्रेक्टर चलाता हूँ और वहीं ट्यूब वैल पर नहाता हूँ!" कुंवरजी ने फर्राटे से कहा तो सत्यपाल ने कुरेदा, "काहे की खेती कर रहे हो?"

"भई अभी तो यह परख रहे हैं कि जमीन किस चीज़ के लायक है···जिसके लायक ज़मीन होगी, बस उसी की खेती शुरू···"कुंवर बोले। सत्यपाल ने आगे पूछा, "क्या-क्या बोया है?"

"इस बार तो पूरा फार्म बीस-पच्चीस हिस्सों में बाँट दिया है। एक हिस्से में गेहूँ, एक में कपास, एक में चना और इसी तरह मक्का, उरद, गन्ना, अरवी, आलू, प्याज़, सौंफ, मटर, दालें, ज्वार, बाजरा··· यानी सभी का बीज डाला है!" कुंवर बोले जा रहे थे, "अरे मिट्टी की जात तो अब कोई हमसे पूछे!"

"रबी और खरीफ दोनों फसलें उगा रहे हो?"

"दो क्या यार, पचीस फ़सलें उग रही हैं···"कुंवरजी ने बड़े गर्व से कहा, "गाँव में पैदा हुए और वहीं मरेंगे अब तो···कभी आना···ज़रा जश्न रहेगा··· ? और नए किसान कुंवरजी उठकर डाकख़ाने की ओर चले गए। उनके फटे पाल की नाव हवा के सहारे जिन्दगी के समन्दर में किस तरह चकराती रही, नहीं मालूम।

भरेपूरे-अधूरे

घर में मोटर साइकिल के आने से एक नई रौनक आ गई थी। मोटर साइकिल के आते ही सबसे पहले बैठक की खिड़कियों पर नए परदे पड़ गए थे। जयप्रकाश बाबू ने यह भी महसूस किया था कि राधा अब साड़ी बदलकर और बाल संवारकर ही बाहर निकलने लगी है, सब्ज़ीवाला अब भी आता है, पर राधा भाव-ताव पर उससे उतना तक़रार नहीं करती, जितना कि पहले किया करती थी···

बरामदे में मोटर साइकिल खड़ी रहती, तो ऐसा लगता रहता, जैसे घर में कुछ बांकपन आ गया है। राधा की नज़र इस बात पर भी रहने लगी कि चारों बच्चों में से कोई भी नंगे पैरों बाहर न निकल जाए।

क्रोशिए से उसने बैठक की मेज़ के लिए जालीदार टेबिल-क्लॉथ भी बुन लिया था और हर रोज़ बच्चों के स्कूल जाने से पहले उनके जूतों पर पॉलिश भी कर दिया करती थी।

जयप्रकाश बाबू को इससे बड़ी सन्तुष्टि होती थी···सैकिण्डहैण्ड मोटर साइकिल ख़रीद लाने के बाद से घर में अजीब-सा ढब और बड़प्पन आ गया था। बच्चे शेर हो गए थे, बीवी पड़ोसियों को 'घर बनाने' की हिदायतें देने लगी थी और दूसरों के घरों का हालत देखकर अब जरा ज्यादा दुखी होने लगी थी।

पड़ोस वालों की मशीन पर वह जयप्रकाश बाबू के लिए धारीदार नाइट सूट सिल लाई थी और हर रात उन्हें ज़बरदस्ती पहना देती थी।

"सलीका तो तुमने सीखा ही नहीं!" राधा कभी-कभी उन्हें ताड़ देती, "ऐसे अच्छा नहीं लगता कि धोती और बनियाइन पहनकर सवेरें-सवेरे घूमने लगो···सुबह-सवेरे भी कई लोग आ ही जाते हैं···" और अपने पैरों के नाखूनों

पर वह नेलपॉलिश भी लगाने लगी थी।

जयप्रकाश बाबू सोकर उठते और गुसलखाने से वापस आते तो उन्हें स्टूल पर शेव का सामान रखा हुआ मिलने लगा था...

और एकाएक हुए परिवर्तन से कभी-कभी वे चकित रह जाते थे। पर मन में कहीं यह सन्तोष और भी गहरा जाता कि अब घर कुछ ऊपर उठ रहा है। उनके जीवन-स्तर में सुधार हो रहा है।

मोटर साइकिल का इतना गहरा और महत्त्वपूर्ण प्रभाव उनके रहन-सहन पर पड़ जाएगा, यह उन्होंने पहले कभी नहीं सोचा था।

और पड़ोसी औरतों के बीच राधा बड़े विश्वास और सहज स्वाभिमान से कहती, "सबसे पहली चीज तो घर है! आदमी घर बना ले तो समझो, सब कुछ बना लिया...माधुरी के पापा कह रहे थे कि एक खाने की मेज और ले आएँगे...आजकल कौन खाता है चौके में बैठकर..."

जयप्रकाश बाबू को अपना बनता हुआ घर दिखाई देता, तो बड़ी खुशी से भर जाते...लगता था जैसे राधा में एक बार फिर से चुस्ती आ गई है। उसने बच्चों के सोने का इन्तज़ाम दूसरे कमरे में कर दिया था। और दो कोनों में पड़ी खाटों को सटाकर बिछा दिया गया था। जो खाट नीची पड़ती थी, उसके नीचे ईंटें लगाकर बराबर कर दिया था। उन दोनों खाटों से बने हुए डबल-बेड पर चौबीसों घण्टे बिस्तर बिछा रहा था और जयप्रकाश बाबू का नाइट सूट वह बिला नागा सिरहाने रख देती थी...

घर में चाहे और कुछ न आया हो, पर मोटर साइकिल के आ जाने से एक अजीब-सी सम्पन्नता लगने लगी थी।

"कुछ दिनों बाद नई ख़रीद लेना!"

"और क्या...इस पुरानी पर अच्छी तरह चलाना सीख जाऊँगा...तब तक नई का नम्बर आ जाएगा..."

"एक रोज़ ज़रा हमें भी घुमा लाओ...कितने महीने हो गए हैं घर से बाहर गए हुए..."

"अब तुम अपने झंझट से निपट लो, तब घुमाने ले जाया करेंगे...ज़रा-सा कहीं झटका-वटका लग गया तो तकलीफ में पड़ जाओगी..."

"ये झंझट तुम्हीं लगा देते हो...खिसको ....उधर ...." राधा बड़े प्यार से उलाहना देकर आहिस्ता से बगल में लेटकर सो जाती।

एक दिन जयप्रकाश बाबू दफ्तर से लौटे तो देर भी हो गई थी और मोटर साइकिल भी साथ नहीं थी। राधा ने देखा तो अचरज में पड़ गई। इससे पहले कि वह कुछ पूछे जयप्रकाश बाबू ने कहा, "ज़रा-सा तेल गरम कर देना..."

"क्यों, क्या हुआ?"

"वह साली मोटर साइकिल स्लिप हो गई···पुरानी तो है ही, पुरज़े चुस्त-दुरुस्त नहीं हैं···वह तो कहो, जान बच गई, नहीं तो हड्डी-पसली चूर हो जाती···"

"मोटर साइकिल कहाँ है?"

"मरम्मत के लिए डाल आया हूँ। चेन साली टूट गई···अगला पहिया अलग हो गया। साली धुरी से उड़ गया···"

"बड़ी खैर हुई!" राधा ने आतंकित भाव से कहा।

और रात में जयप्रकाश बाबू अपनी कमर पर मालिश करवाते रहे।

"धमक लग गई है!" राधा ने आतंकित भाव से कहा।

"दर्द तो इतना हो रहा है कि लगता है साली हड्डी हट गई है···"

"तुम मोटर साइकिल बेच डालो—लेना तो अब नई लेना। पुरानी चीज़ पुरानी ही होती है···"

और जब मैकेनिक ने मरम्मत का खासा खर्चा बता दिया तो जयप्रकाश बाबू ने बारह सौ में ख़रीदी हुई मोटर साइकिल आठ सौ में बेच दी और रुपया बैंक में जमा कर आए।

"यह तुमने अच्छा किया···"राधा ने सुना तो बोली, "अब इस रुपए से कोई ज़रूरत की चीज़ ख़रीद लेंगे···माधुरी रेडियो की रट लगाए हुए है···न हो तो···"

"नहीं-नहीं, इसमें से पाई भी खर्च नहीं करनी है। आठ सौ में रुपया जोड़ते जाएंगे, तब नई मोटर साइकिल खरीद लाएँगे···"

पर चौथे महीने ही जब घर में नया बच्चा आया तो ख़र्चे एकाएक खड़े हो गए और आठ सौ की रकम घटकर जब पाँच सौ के करीब आ गई तो जयप्रकाश बाबू फौरन बाज़ार जाकर साढ़े चार सौ का रेडियो खरीद लाए। जो पचास ऊपर बचे थे, उनसे कुछ और छोटी-मोटी ज़रूरत की चीज़ें ख़रीद ली गईं।

और तब राधा ने पड़ोसिनों को एक बार फिर भाषण दिया—"कहने लगे, दिन-भर घर में अकेले जी ऊबता होगा···रेडियो से ज़रा दुकेला-पन हो जाता है···नहीं ···नहीं, किस्तों पर नहीं, नकद लाए हैं। ये किस्त-विस्त का झंझट कौन पाले, बहनजी!"

दिन-भर घर में रेडियो चहकता रहता। जयप्रकाश बाबू को संतोष होता कि चलो यह भी एक काम की चीज़ आ गई।

साबुत गोभी घर में पकी देखकर तो वे चकित ही रह गए कि तभी राधा

ने गोद की मुन्नी को लिटाते हुए गर्व से पूछा, "कैसा लगा?"

"बहुत बढ़िया···बढ़िया बना है!"

"रेडियो पर संगीत-शिक्षा का प्रोग्राम भी आता है। घर में हारमोनियम हो तो माधुरी सीख ले···अगले महीने से हारमोनियम सिखलाने का पाठ शुरू कर रहे हैं रेडियोवाले···माधुरी का बड़ा मन है सीखने को···" राधा ने सहजता से कहा।

"पैसे कहाँ हैं?" जयप्रकाश बाबू ने सधा-सा उत्तर दे दिया, "एक पाई नहीं बचती है।"

"यही दिन है उसके सीखने के···कल को पराए घर चली जाएगी···"

"देखो···" जयप्रकाश बाबू ने कहा और उन्हें एकाएक लगा कि ऊपर उठता हुआ घर साहसा कहीं पर अटक गया है। राधा के नाख़ूनों पर पॉलिश है। खाटें भी डबल बेड बनी हुई हैं। बच्चे भी दूसरे कमरे में सोते हैं। नाइट ड्रेस भी एकाध धोब चल जाएगी···पर कहीं कुछ है जो रुक गया और वह पूरे घर की ख़ुशहाली को कैद किए हुए है। ज़्यादा अफसोस उन्हें नहीं हुआ, पर मन में बुरा ज़रूर लगता रहा।

"देख रहे हो, कितने बाल टूटने लगे हैं!" अपने बाल काढ़ते हुए राधा ने उन्हें दिखाया था, "इतनी-सी चोटी रह गई!" उसने छाती पर बाल लाकर अपने अन्दाज़ से नापते हुए कहा था।

"घनापन भी उतना नहीं रह गया है···" जयप्रकाश बाबू ने उसकी बात की ताईद में कहा, "यह एकाएक क्यों झड़ने लगे?"

"जब से मुन्नी हुई है, तभी से झड़ने लगे हैं···गांठ बराबर जूड़ा रह गया है!" उसने बाल लपेटकर छोटा-सा जूड़ा बना लिया था।

एक दिन बच्चों की हुड़दंग में रेडियो धड़ाम से नीचे आ गिरा। कैबिनेट टुकड़े-टुकड़े हो गया। नाब्स की डंडियां बुरी तरह भीतर घुस गईं और मरम्मत करने वाले ने करीब नब्बे रुपए की मरम्मत बताई तो जयप्रकाश बाबू अचकचा गए। तनख्वाह में से नब्बे रुपए काटकर निकाल देना मुमकिन नहीं था। आखिर सोच-सोचकर वे ढाई सौ रुपए ले आए और उन्हें फिर बैंक में जमा कर दिया गया।

"इसमें से अब एक पाई नहीं निकाली जाएगी···डेढ़ सौ और जोड़कर नया रेडियो ही आएगा!" उन्होंने एलान कर दिया।

बच्चे भी खुश बने रहे कि यह फैसला सही है। जयप्रकाश बाबू को यह सन्तोष था कि घर की हालत में कोई ख़ास फर्क नहीं आया था। राधा के पैर के नाखूनों पर अब भी पॉलिश चमकती है। बच्चे दूसरे कमरे में सोते हैं।

नाइट ड्रेस ज़रूर फट गई है पर खाटें अब भी डबल-बेड बनी हुई हैं। सिर्फ यह हुआ कि घर अपनी जगह पर रुका हुआ है। रहन-सहन जैसे ठहरकर रह गया है।

"फिर मुसीबत में डाल दिया न!" राधा ने जब एक दिन कहा तो जयप्रकाश बाबू अवाक् सुनते रह गए। उन्हें चुप देखकर उसने फिर उलाहना दिया, "कहती थी कि इन्तज़ाम कर लो⋯पर नहीं⋯अब भुगतना⋯" उसकी आँखों में हल्की शोख़ी और होठों पर मुसकराहट थी।

"यह तो तुम्हें ख़्याल रखना चाहिए⋯"

"यह खूब रही!"

"बड़ी मुश्किल हो जाएगी⋯" जयप्रकाश बाबू ने कहा।

"पड़ोसवाली बहनजी को भी ज़रूरत पड़ गई थी⋯खतरा भी कोई नहीं हुआ। अस्सी रुपए में, एक ईसाई नर्स है, वह कर देती है⋯"

"दिखा लो।" जयप्रकाश बाबू ने बहुत आसानी से कहा और चुपचाप बैठ गए।

अगले हफ्ते ही उन्हें बैंक से सौ रुपया लाना पड़ा और सब ठीक-ठाक हो गया।

और बचे हुए रुपयों में से एक सौ बीस का जब हारमोनियम लाकर उन्होंने माधुरी के सामने रख दिया तो राधा बहुत खुश हुई, "चलो, पैसा ज़रूरत की चीज़ में लग गया⋯माधुरी का बड़ा मन था!"

जयप्रकाश बाबू को भी खुशी हुई और बचे हुए तीस रुपयों की वे छोटी-मोटी ज़रूरतों की चीज़ें खरीद लाए।

वह हारमोनियम बहुत दिन बजता रहा। पर जब माधुरी का शौक थम गया तो उसे लपेटकर मेज़ के नीचे रख दिया गया।

कई हफ्तों बाद जब एक दिन माधुरी ने फिर स्वर-साधना शुरू करनी चाही तो देखा कि उसकी धौंकनी की चाल चूहों ने काट डाली है। लकड़ी भी वे जगह-जगह से कुतर गए थे।

"माधुरी के लिए कुछ सोचा?" एक दिन राधा ने कहा तो जयप्रकाश बाबू ने हल्की चिन्ता से उसे देखा।

"लिखा तो है एकाध जगह!" उन्होंने कहा।

"मैं आज दोपहर उधर बाजार गई थी तो बुआजी मिली थीं⋯एक लड़का बताया है उन्होंने!" राधा बोली।

"अच्छा⋯देख लेंगे!"

"और सुनो, यह हारमोनियम अलग कर दो, माधुरी बजाती-वजाती भी

नहीं। बस, पड़ा है···बगैर बाजा-मास्टर के सीखे भी तो कैसे···क्यों?"

"कितने रुपए मिल जाएँगे···पड़ा रहने दो।" उन्होंने कहा।

"क्या फायदा···"

"अच्छा···"

और तीसरे-चौथे दिन जयप्रकाश बाबू हरमोनियम लेकर गए और सत्तर रुपए लेकर लौट आए। रुपए लाकर उन्होंने रामायण में रख दिए और बोले, "इसमें से कोई खर्चा मत करना, समझीं···वक्त-ज़रूरत के लिए पड़े रहेंगे···"

"हाँ···छोटी-मोटी ज़रूरतें आ ही जाती हैं!" राधा ने कहा, "चार पैसे पास हों तो अच्छा ही है।"

उन्होंने ग़ौर से राधा को देखा। उसके पैर के नाखूनों पर पॉलिश चमक रही है। बच्चे दूसरे कमरे में ही सोते हैं। नाइट ड्रेस के टुकड़े घर में सफाई के काम आ रहे हैं। खाटें वैसी ही डबल बेड बनी हैं।

"कल मैं ज़रा ऊन ख़रीद लाऊँ?" कई दिनों बाद राधा ने कहा था, "उसमें से ले लूँ, यह भी तो ज़रूरी ही है···मुन्ना के पास स्वेटर कहाँ है!" अपने बालों में तेल लगाते हुए राधा ने फिर अफसोस से अपनी चोटी को देखा और चुप हो गई।

"तुम्हारे बाल सचमुच बहुत गिर गए हैं···" जयप्रकाश बाबू ने बड़ी आत्मीयता से कहा।

"शादी के वक्त घर-भर में सबसे लम्बे बाल थे हमारे···" राधा बोली।

"वक्त कितनी जल्दी गुज़र जाता है!" जयप्रकाश बाबू ने हरसत से उसे देखते हुए कहा।

"तुम्हारे बाल भी तो बहुत सफेद हो गए हैं···"राधा बोली।

"उमर का तकाज़ा है···"

"इतनी उमर अभी कहाँ से हो गई है···तुमसे ज्यादा उमरवालों के सियाह-काले रखे हुए हैं!"

"तुम्हें आँवले के तेल से कुछ फायदा हुआ?" जयप्रकाश बाबू ने पूछा।

"कुछ भी तो नहीं हुआ···" राधा की आवाज़ में हल्की-सी निराशा थी।

"और कोई तेल इस्तेमाल कर देखो···"

"कुछ होगा नहीं···तेईस नम्बर वाली है न···गुप्ताजी के घर में···वे सब इस्तेमाल करके देख चुकी हैं···"

"उनके बाल तो बहुत अच्छे हैं···"

"नकली लगाती हैं···"

"ऊन खरीदने जाना तो तुम भी लेते आना···"

"मैं नहीं लाती··· मुरदा औरतों के हों, कौन जाने··· "

"अरे भाई, नायलन के भी होते हैं··· इसमें क्या बात है··· समझी··· लेती आना··· तुम्हारे जूड़ा अच्छा लगता है। बाल या दाँत खराब हो जाएँ तो आदमी कित्ता बूढ़ा लगने लगता है··· "

और दूसरे ही दिन राधा बाज़ार जाकर तीन बच्चों के लिए पैंतालीस रुपए का ऊन खरीद लाई। घर लौटी तो जयप्रकाश बाबू खाट पर बैठे चाय पी रहे थे।

"ठीक है!" ऊन दिखाते हुए राधा ने पूछा।

"अच्छे रंग हैं!" जयप्रकाश बाबू बोले, "यह तो हमने देखा ही नहीं था··· "

"अच्छा लगता है?" राधा ने अपने भरे जूड़े में पिनों को दबाते हुए कहा।

"तुम तो बदल गईं··· " उनकी आँखों में प्यार की मद्धिम-सी लौ दमक उठी थी।

"सोलह रुपए बच गए थे, सो उनमें से एक यह लेती आई हूँ!" कहते हुए राधा ने एक पैकिट जयप्रकाश बाबू के हाथ में पकड़ा दिया, "सोचा कि कोई ज़रूरत की ही चीज़ लेती चलूँ··· नहीं तो ये सोलह भी यूँ ही उड़ जाते।"

"है क्या?"

"देख लेना··· "

"अरे, यह तुम नाहक लेती आईं।" डिब्बा खोलकर शीशी देखते हुए जयप्रकाश बाबू बोले, "इसमें कहीं पूरी तरह बाल काले होते हैं? टिकाऊ थोड़े ही हैं··· "

"बार-बार लगाने से हो जाते हैं··· "राधा बोली, "लाओ, रख आऊँ··· कल छुट्टी है, लगा लेना···"

"सब खर्च कर आई?"

"सात रुपए बचे हैं··· पाँच-सात दिन तो निकल जाएँगे··· महीना भी पार आ लगा है। और अब फिलहाल कोई ऐसी ख़ास ज़रूरत भी नहीं है··· चल जाएगा।" कहती हुई राधा ऊन व ख़िज़ाब की शीशी लेती हुई भीतर चली गई।

जयप्रकाश बाबू उसे ग़ौर से देखते रहे··· नाखूनों पर पॉलिश है। कमरे में खाटें भी डबलबेड बनी हुई हैं। बच्चे दूसरे कमरे में सोते हैं··· घर भी ज्यों-का-त्यों है। तभी उन्हें एकाएक ख़्याल आया और वहीं से बोले, "सुनती हो, वह, तस्वीर के पीछे रख देना··· "

अपने अजनबी देश में

एक बार मैं घूमता-घामता अपने अजनबी देश के शहर में पहुँच गया। लोगों ने बताया कि यह शहर बहुत ही अच्छा है। हिन्दुस्तान के सभी शहर ऐसे हो जाएँगे। बात असल में यह थी कि हिन्दुस्तान में लोकतंत्र आ गया था। लोकतंत्र के आने के कारण सब तरफ खुशहाली थी। हर तरफ निर्माण का काम चल रहा था। जिस सड़क से मैं पहली बार गुजरा, उसकी मरम्मत हो रही थी। एक मील पीछे मेरी टैक्सी थी··· दायें-बायें मोटर, स्कूटरें, ट्रक, बसें, सायकिलें भरी हुई थीं। उस रेलम-पेल में बड़ी रौनक थी। मैंने टैक्सी ड्राइवर से पूछा, "क्यों भई इस अजनबी देश में ऐसी रौनक पहले भी कभी होती थी?"

"अजी पहले कहां! यह सब तो आज़ादी के बाद शुरू हुआ है। पहले तो रातों-रात सड़कों की मरम्मत हो जाती थी, जनता को पता तक नहीं चलता था··· आज़ादी के बाद जब से जनता का राज हुआ है, सब काम जनता की आंख के सामने होता है इसीलिए सड़कें खोद दी गई हैं! और रौनक बहुत ज्यादा बढ़ गई है!" उस ड्राइवर ने बताया।

उसकी बात सुनकर मेरा दिल बहुत खुश हुआ। टैक्सी भीड़ में अटकी हुई थी, इसलिए ड्राइवर बात करने लगा, "पिछले दो साल से यह सड़क बन रही है। इसका ठेका मेरे चचेरे भाई के जीजे के पास है। वह बहुत बड़ा ठेकेदार है! एक तरफ जनता की सड़क बनाता है दूसरी तरफ फौज के लिए बंदूकों के बेंट बनाता है। इस सड़क का काम रुका हुआ है पर वह बेचारा भी क्या करे, जब सड़क बनाने का माल ही नहीं मिलता, तो सड़क बनाना ज़रूरी भी नहीं रह जाता, चूंकि हिंदुस्तान में लड़ने के लिए फौज मिल जाती है, इसलिए बंदूकों के बेंट बनाना ज्यादा ज़रूरी हो जाता है। बड़ा ईमानदार ठेकेदार है इसलिए उसने सड़क की मरम्मत का काम रोका हुआ है।"

यह सुनकर मेरा दिल और भी खुश हुआ। जो जनता अपनी असली ज़रूरतों को समझ लेती है वही लोकतन्त्र का निर्माण करती है। जब हिंदुस्तान का एक टैक्सी ड्राइवर बगैर किसी शिकवे-शिकायत के इतनी समझदारी की बात कर सकता है, तो औरों का रवैया क्या होगा, यह आसानी से समझ में आ गया। यही लोकतंत्र का सच्चा रवैया है, जो मैंने अपने अजनबी हिंदुस्तान में पहली बार देखा।

जिस परिवार में मैं ठहरा, वह लोकसेवकों का था। घर के सबसे बड़े व्यक्ति दीवानचंदजी एक फैक्ट्री के मालिक थे। उनके छोटे भाई भगवानचंदजी कार्पोरेशन के सदस्य थे और दीवानचंद का इकलौता बेटा घर के ऐशो-आराम छोड़कर कमीशन प्राप्त कर भारतीय फौज में सेकिंड लैफ्टिनेंट हो गया था। घराने के तीनों मर्द जनता और देश की सेवा में लगे हुए थे।

मुझे उस वक्त बड़ी खुशी हुई जब—दीवानचंदजी ने अपने लड़के आनंद के बारे में बताया—"निशाना तो उसका अचूक है। एक बार फैक्टरी में मज़दूरों ने हड़ताल कर दी और जब वे जुलूस बनाकर फैक्टरी के फाटक पर प्रदर्शन के लिए नारे लगाते हुए आ रहे थे, तो पहले से तैनात पुलिस पीछे हटने लगी। आनंद ने आव देखा न ताव, पिस्तौल निकालकर झंडा उठाए हुए मज़दूर पर ऐसा फायर किया कि एक गोली में ही उसका झंडा नीचे गिर गया और बांह चिथड़े-चिथड़े हो गई...उसके बाद पुलिस ने फायर किया..."

यह सुनकर हिंदुस्तान की पुलिस के बारे में मेरे ख़्यालात बहुत ऊंचे हो गए। जनता की ऐसी पुलिस लोकतंत्र में ही हो सकती है...जब जनता के एक नौजवान ने पहला फायर किया, तब पुलिस ने गोली चलाई। और देशों की पुलिस तो उलटे जनता पर ही गोली चलाती है।

मैंने खुश होते हुए दीवानचंदजी से पूछा, "आपके यहां लोकतंत्र बहुत सफल हो रहा है...मगर यह अन्न वगैरह की दिक्कत की बातें सुनाई पड़ती हैं, इस मसले को आप लोग कैसे हल कर रहे हैं?"

"रेफ्रीजरेटर और नेलपॉलिश बनाकर!" दीवानचंदजी ने कहा, "अन्न की बड़ी विकट समस्या है हमारे देश में! हमार देश का हर आदमी एक सैनिक की तरह अपनी-अपनी जगह काम कर रहा है! हमने अपने गांव की सब ज़मीनें बेचकर फैक्ट्री लगाई! अन्न की समस्या सुलझाने के दो ही तरीके हैं। एक तो यह कि पेट भरने के लिए ज्यादा अन्न पैदा किया जाए। वह हमारे यहां अपने-आप हो जाता है, क्योंकि भारत कृषि-प्रधान देश है और पच्चानवें प्रतिशत भारत गांव में रहता है। इसलिए उस दिशा में कुछ ज्यादा नहीं किया जा सकता। दूसरा तरीका यही है कि लोगों की खाने की आदतों को बदला

जाए। आपने यह देखा होगा कि फैशनेबुल औरतें बहुत कम खाती हैं… अगर हम औरतों को फैशनेबुल बना दें, तो दूसरी तरह से यह काम अपने-आप शुरू हो जाता है। औरत में एक ख़ासियत यह भी होती है जो काम वह खुद नहीं करती, वह दूसरों को भी नहीं करने देती… इस तरह आदमी भी कम खाएगा। नेलपॉलिश दिमागी रूप से औरत को फैशनेबुल बनाती है, इसलिए अन्न-समस्या को सुलझाने में काम आती है।

"और रेफ्रीजरेटर तो बड़ी काम की चीज़ है। हिन्दुस्तान गर्म मुल्क है, इसलिए यहां अन्न की वस्तुएं बड़ी जल्दी सड़ती हैं। अगर सड़नेवाले अन्न को बचाया जा सके, तो आधी समस्या अपने-आप हल हो जाती है… हम तो साहब इस तरह से सेवा में लगे हुए हैं…"

दीवानचंदजी की बातें सुनकर मेरी आंखें खुल गईं और यह मानने के लिए मजबूर होना पड़ा कि अपने अजनबी भाइयों का दिमाग ग़ज़ब का है। और लोकतंत्र बिना दिमाग के नहीं चल सकता।

उन दिनों दीवानचंदजी के चिरंजीव आनंदजी घर पर ही थे। एक हफ्ते की छुट्टी पर आए हुए थे। चिरंजीव ज़रा खुली तबीयत के आदमी थे। घर पर उनकी शादी की बातचीत चल रही थी कि वे मुझसे बोले, "जब से चीन ने हम पर हमला किया है, हमारा लोकतंत्र खतरे में पड़ गया है साहब! ज़िन्दगी का रूप ही बदल गया, नहीं तो ऑफीसर्स मैस की ज़िंदगी का कोई जवाब नहीं था। पीना-खाना और नाचना-गाना। उन दिनों हम कुंवारों की कीमत भी खासी थी। हर लड़की शादी करने के लिए उतराई घूमती थी, क्योंकि सबको पता था कि लोकतंत्र की फौजें लड़तीं नहीं। भारतीय लोकतंत्र की फौज तो लड़ाई के लिए बनाई ही नहीं गई थीं! इसलिए हर लड़की फौजी अफसर के साथ शादी करने के लिए उतावली दिखाई पड़ती थी। जिस दिन से चीनियों ने हमला किया, हम फौजी अफसरों का भाव, लड़कियों के बाजार में, एकदम गिर गया… लोकतंत्र की रक्षा हम इसलिए भी करना चाहते हैं कि यह भाव बना रहे…"

आनंद की बात मुझे बहुत जंची और यह भी मालूम हुआ कि हिंदुस्तान में लोकतंत्र के लिए लोग क्यों लड़ रहे हैं! यह पक्का विश्वास भी हुआ कि लोकतंत्र यहां सफल होकर ही रहेगा—क्योंकि उसके पीछे ऐसी ऊंची भावनाएं हैं।

मैं यही सोच रहा था कि खाने के लिए बुलावा आ गया और खाने की मेज़ पर दीवानचंदजी के भाई भगवानचंदजी से मुलाकात हुई। वे मुझे बड़े तपस्वी आदमी लगे, वे कार्पोरेशन के सदस्य थे और लोकसेवा का तेज उनके

चेहरे पर छाया हुआ था। उनके व्यक्तित्व में अजीब-सा खिंचाव था।

हम लोग खाना खाने बैठे ही थे कि भगवानचंदजी के लिए फोन आ गया, फोन पर किसी ने उन्हें बधाई दी। यह उनकी बातों से पता चला। उनके बड़े भाई दीवानचंदजी अपनी उत्सुकता नहीं रोक पाए तो पूछ ही बैठे, "किसका फोन था?"

"ठेकेदार साहब का!" भगवानचंद ने कहा, "बधाई दे रहे थे···कि सब मामला ठीकठाक निपट गया···"

मेरी उत्सुकता भी बढ़ गई। सोचा कि खुशी की बात पर ही बधाई दे रहे होंगे, सो पूछ ही बैठा, किस बात पर बधाई मिल रही थी आपको! हमें भी खुशी होगी जानकर···"

भगवानचंदजी ने बताया, "लोकतंत्र" है न हमारे यहां···साहब रोज़ कोई-न-कोई चक्कर लगा रहता है। लोकसेवा में रोज़ एक-न-एक झंझट खड़ा ही रहता है। जनता की सेवा न करो तो बदनामी होती है सेवा करो तो बदनामी होती है। कार्पोरेशन की एक समिति की अध्यक्षता मैं कर रहा था···उसके ज़िम्मे कुछ मकान बनवाने का काम था। मैंने ईमानदारी से सारा काम अंजाम दिया।···पर कार्पोरेशन के कुछ और सदस्यों को मेरी यह ईमानदारी खल गई! उन्होंने मुझ पर आरोप लगाया कि कार्पोरेशन की ओर से बनवा वाली रिहायशी इमारतों को बनवाने के बीच ही मैंने उसी के पैसे से अपने दो मकान भी बनवा लिए हैं।"

"यह झूठा आरोप आप पर लगा दिया गया?" मैंने जानना चाहा तो भगवानचंदजी ने कहा, "आप घर के आदमी हैं···छिपाऊं क्या···मकान तो ज़बरदस्ती ठेकेदार ने बनवा दिए थे। माना ही नहीं। इसी बात पर मुझ पर घूस लेने का इल्ज़ाम लगाया गया और एक इंक्वायरी बैठा दी गई! लोकतंत्र में यह सब बहुत ज़रूरी होता है, नहीं तो एक भी आदमी की इज़्ज़त न बचने पाए और लोकसेवा के काम की ओर कोई रुख तक न करे।···इसी वक्त मुझे एक अनुभवी सदस्य साथी ने रास्ता सुझाया—लोकतंत्री रास्ता—उन्होंने कहा कि घूस देकर इस इल्ज़ाम से बरी हो जाओ! यह हमारे लोकतंत्र की बुनियादी बात है। और साहब, यही हुआ। कल मैं बरी हो गया···उसी के बारे में ठेकेदार बधाई दे रहा था।"

यह सब सुनकर मुझे फिर बहुत खुशी हुई। भगवानचंदजी ने बड़े संतोष से कहा, "यही सच्ची बुनियाद है! इससे लोकतंत्र भी बच गया, मैं भी बच गया और ठेकेदार भी। इसी तरह हम आगे बढ़ते जा रहे हैं और बढ़ते जाएंगे, हिन्दुस्तान में यह निज़ाम जड़ें पकड़ता जाएगा, क्योंकि हम जमहूरियत की

बुनियादी बातें लेकर चल रहे हैं!"

मेरा यकीन और भी पक्का हो गया कि हिन्दुस्तान में चाहे और सब खत्म हो जाए पर लोकतंत्र कभी खत्म नहीं होगा।

दूसरे दिन शाम को मैं एक और परिचित के यहां चला गया था। वह ज़रा निचले तबके का था। एक सरकारी दफ्तर में क्लर्क था और हिंदुस्तानी लोकतंत्र में बड़ी मुश्किल से वक्त काट रहा था। उसके सामने बहुत-सी मुसीबतें थीं और मुसीबतों को हल करने के अलावा उसके पास और कोई काम नहीं था। यह देखकर मुझे ताज्जुब भी हुआ कि इतनी मुसीबतों को झेलते हुए भी वह आदमी हिंदुस्तानी नेतावाद लोकतंत्र के खिलाफ कुछ नहीं बोल रहा था। उसे सिर्फ एकाध नेताओं से शिकायत थी और अपनी किस्मत से। उसके पास रहते हुए मुझे यह भी पता चला कि लोकतंत्र और किस्मत का चोली-दमन का रिश्ता है⋯जब तक हिंदुस्तान में लोग भाग्य पर विश्वास करते हैं, लोकतंत्र को कोई हिला नहीं सकता।

सरकार पर नाराज़ इसलिए था कि उसने शराबबंदी कर रखी थी, और मुसीबतों को हल करने के लिए शराब की उसे बहुत ज़रूरत महसूस होती थी। यही सीधा रास्ता उसके सामने था।

शाम को मेरा वह परिचित क्लर्क वासुदेवन साथ निकला और शराब की तलाश में इधर-उधर घूमने लगा। कई बस्तियों की ऐसी दुकानों के चक्कर उसने लगाए जहां उसे शराब मिलने की उम्मीद थी। जब नहीं मिली तो मैंने कहा, "अब आप यह नेक ख़्याल छोड़ दीजिए।"

"तब तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाएगा⋯शाम का ख़ून हो जाएगा।" वासुदेवन ने कहा, "किसी टैक्सी वाले से पता करता हूं⋯इन लोगों को पता रहता है।"

"क्यों अपनी बेइज़्ज़ती कराने पर उतरे हो" मैं कह ही रहा था कि वासुदेवन ने एक टैक्सीवाले से सवाल कर ही दिया। वह टैक्सी वाला पता न होने का इशारा करके चलता बना।

मैंने उसे समझाया, "अब यह इरादा छोड़ ही दीजिए। कई पुलिस के सिपाही आस-पास घूम रहे हैं, ज़रा-से में तमाशा हो जाएगा।"

"पुलिस!" वासुदेवन खुशी से चीखा, "यार तुमने अच्छी बात याद दिलाई। पुलिस वाले को ज़रूर पता होगा!"

"दिमाग़ ख़राब हो गया है तुम्हारा।" मैंने उसे फटकारा, "हथकड़ियां

पड़वाओगे क्या?" पर वासुदेवन के चेहरे पर खुशी छलक रही थी।

एक तरफ टैक्सियों के अड्डे के पास अकेला पुलिसमैन खड़ा बीड़ी पी रहा था और बड़ी तेज़ निगाहों से लोगों को देख रहा था। वासुदेवन लपककर उसके पास पहुंचा और उसने दो रुपये पुलिसवाले की हथेली में रखते हुए सीधे-सीधे पूछा, "हवलदार साहब! यहां कहीं मसाला मिल जाएगा?"

"देशी या विलायती!" पुलिसवाले ने दरयाफ़्त किया।

"कोई भी" वासुदेवन कह रहा था, और मेरी जान सूख रही थी।

"मिल जाएगा!"

"कहां?"

"लाइए मैं ला देता हूं···पांच और ऊपर से पड़ जाएंगी!" पुलिसवाले ने कहा और रुपये लेकर बगलवाली गली में घुस गया।

मैं अब तक अपनी बदहवासी से उबर नहीं पाया था। मुझे परेशान देखकर वासुदेवन ने कहा, "यह अपने अजनबी देश की पुलिस है भाईजान! जनता की सेवा करती है···लोकतंत्र की रक्षा करती है···"

इतने में वह पुलिसवाला लौट आया था। एक झोले में बोतल पड़ी थी, आते ही उसने कहा, "एक रुपया झोले का और हुआ।"

वासुदेवन ने एक रुपया और उसकी नज़र किया और पुलिसवाले ने हल्के-से वासुदेवन को सलाम किया और एक ओर खिसककर फिर बीड़ी पीने लगा।

इस घटना के बाद तो मेरी खुशी की सीमा ही नहीं रही। मैंने वासुदेवन से पूछा, "यहां पुलिस यह भी करती है?"

"पुलिस नहीं, गरीबी करती है। और गरीबी लोकतंत्र की एक बड़ी शर्त है। सच्चा लोकतंत्र वही है, जहां जनता और सरकार का कोई संबंध नहीं होता। सरकार सोचने का काम करती है और जनता अपना काम करती है···इस सोचने और काम करने में कोई ताल-मेल नहीं होता···जब तक यह हालात रहते हैं, लोकतंत्र बना रहता है।"

यह सुनकर मुझे और भी संतोष हुआ कि हिंदुस्तान में दो ही तरह के तबके हैं···अमीरों और गरीबों के। सोचनेवालों और काम करनेवालों के···और यह अच्छी बात है कि जो सोच रहा है वह काम नहीं कर रहा है, और जो काम कर रहा है, वह सोच नहीं रहा है।

चलते हुए मैंने पीछे मुड़कर देखा···पुलिसवाला सिर्फ अपने काम में मशगूल था। वह कुछ सोच नहीं रहा था सिर्फ बीड़ी पीते हुए तेज़ निगाहों से आते-जातों को देख रहा था।

ज़िंदा मुर्दे

उन दिनों पाकिस्तान में बड़ी सरगर्मियां थीं। हर तरफ एक अजीब-सा तनाव नज़र आता था। सरकारी हल्कों में बड़ी भागदौड़ हो रही थी। पता यह चला था कि पाकिस्तान के सदर अयूब खां एकाएक मचल पड़े थे और वह टहलते हुए दिल्ली की तरफ आना चाहते थे।

उनकी चहलकदमी के लिए तैयारियां हो रही थीं। सबसे पहले अख़बारनवीसों को बुलाया गया कि सदरे-पाकिस्तान चूंकि टहलते हुए दिल्ली की तरफ जाना चाहते हैं, इसलिए अख़बारी तोपों के दहाने खोल दिए जाएं। गोला-बारूद जमा कर ली जाए और जैसे ही अयूब साहब भारत की ज़मीन पर पहली सितंबर को खुल्लमखुल्ला कदम रखें, वैसे ही बौछार जारी कर दी जाए। जो काम कश्मीर में पांच अगस्त से किया जा रहा है, उसके बारे में दुनिया को कानोंकान खबर न होने दी जाए।

अख़बारनवीसों को रिपोर्टों के कुछ नमूने दे दिए गए, जिनके सहारे उन्हें पहली सितंबर के बाद छपनेवाली खबरों को ढालना था, कुछ अमरीकी और अंग्रेज़ अख़बारनवीसों ने भी इस मीटिंग में हिस्सा लिया और पाकिस्तानी सरकार को यह यकीन दिलाया गया कि उनके अखबारों की तोपें वही आग उगलेंगी, जो सदरे पाकिस्तान चाहते हैं।

अख़बारनवीसों के बाद शायरों को याद फरमाया गया। उनसे कहा गया कि सदरेपाकिस्तान टहलते हुए दिल्ली की तरफ जाना चाहते हैं, इसलिए आप लोग नज़्मों और नग़मों से लैस रहिए। बेहतर यह होगा कि आप शायर लोग इस आने वाले मसले पर पहले से चीज़ें तैयार कर लें। पाकिस्तानी फौजी अफसरों का एक बोर्ड पहले से तैयार कर दिया गया है, जो इसलाह के लिए हर वक्त मौजूद रहेगा। बेहतर होगा कि नज़्में और नग़मे पहले से जंचवा लिए

जाएं ताकि ऐन वक्त पर किसी तरह की दिक्कत न होने पाए। यह ऐलान सुनकर पाकिस्तान के शायरों और अदीबों के चेहरों पर रौनक छा गई। एक ने झिझकते हुए पूछ ही लिया—"इन नज़्मों और नग़मों के लिए हमें कुछ···"

सरकारी अफसर ने फौरन बात ताड़ ली और बोला, "जी हां, मिलेगा···मिलेगा! जब सदरे-पाकिस्तान चहलकदमी करते हुए दिल्ली पहुंच जाएंगे, तब आप लोगों की एक टुकड़ी को वहां भेजा जाएगा और यह इजाज़त दी जाएगी कि आप दिल्ली का उर्दू बाज़ार उखाड़कर रावलपिंडी ले आएं, क्योंकि अपने यहां उर्दू है, पर बाज़ार नहीं है। भारत का मुसलमान और उर्दू पढ़नेवाला तबक़ा चूंकि अपने को हिंदुस्तानी कौम का अटूट हिस्सा मानने लगा है, इसलिए यह ज़रूरी हो गया है कि उसे सबक सिखाया जाए। एक हिदायत और है कि जब आपकी टुकड़ी उर्दू बाज़ार उखाड़ने के लिए जाए, तो गलती से भी कोई हिन्दुस्तानी मुसलमान पकड़कर साथ न लाया जाए, क्योंकि अब तो वह कतई यकीन के काबिल नहीं रह गया है···जो कुछ आप इस दौरान लिखेंगे, उसकी कीमत तय की जाएगी और उसका भुगतान अमरीका और बर्तानिया की सरकारें करेंगी।"

शायरों के बाद बैंडवालों को बुलवाया गया और हुक्म दिया गया कि शायरों के जो नगमे फौजी काउंसिल मंजूर करेगी, उनकी धुनें बनाने का काम उन्हें करना होगा। यह खास खयाल रखा जाएगा कि बाजों में ढोल को ज्यादा अहमियत दी जाए और सुरीले बाजों को इस्तेमाल न किया जाए। सरकारी अफसर ने यह भी कहा कि बैंडवाले ज्यादा-से-ज्यादा ढोल मढ़वाकर तैयार रखें, क्योंकि सदरे-पाकिस्तान की चहलकदमी शुरू होते ही ढोल नेशनल बाजा मंजूर कर लिया जाएगा और उसका रुतबा बढ़ जाएगा। ढोल मढ़ने के लिए खालों की जो कमी पड़ेगी उसको हमारा दोस्त चीन पूरा करेगा क्योंकि खाल खींचने में उससा माहिर दुनिया में दूसरा नहीं है। तिब्बतियों की खाल खींचकर उसने यह साबित कर दिया है। चीन ने हमें यह यकीन भी दिलाया है कि हमारे ढोलों के लिए वह लगातार खालें सप्लाई करेगा, क्योंकि वह सिंक्यांग में बहुत जल्दी अपनी फ़ौजों को खाल खींचने का काम सुपुर्द कर रहा है।

एक बैंडवाले ने बढ़कर पूछा, "क्यों जनाब, हमारे चीनी दोस्त हिंदुस्तानियों की खाल नहीं खींच सकते?"

"यह उस वक्त होगा जब सदरे-पाकिस्तान टहलते हुए दिल्ली पहुंच चुके होंगे। फिलहाल चीन ज़रा घबरा रहा है, पर हमारे दिल्ली पहुंचते ही वह खुलकर खेलेगा···"

बैंडवालों के बाद फोटोग्राफरों को बुलाया गया। सरकारी अफसर ने ऐलान किया—"सारी तैयारियां पूरी हो चुकी हैं और अब आप लोगों का यह

फर्ज है कि आप अख़बारनवीसों का हाथ बटाएं और पाकिस्तानी फौज के अदना सिपाही से लेकर आला कमान तक के अफसरों की तस्वीरें तैयार रखें। आप लोग कुछ ऐसी तसवीरें भी तैयार करेंगे जिनमें अपना कौमी झंडा हिंदुस्तान की ख़ास-ख़ास इमारतों पर फहरा रहा हो। ये तसवीरें पहले से तैयार रहनी चाहिए क्योंकि बर्तानिया और अमरीका के अखबार ऐसी तसवीरों के लिए बड़ी मांग पेश करेंगे···इससे पहले कि सदर साहब चहलकदमी शुरू करें, ये तसवीरें तैयार हो जानी चाहिए।"

और दीगर पेशों के लोगों को भी बुलाकर ज़रूरी हिदायतें दी गई। जब यह सब तैयारी पूरी हो गई तो एक दिन सुबह-सुबह रावलपिंडी में ढोल बजने लगे। सदर अयूब खां चहलकदमी के लिए तैयार थे।

अख़बारनवीस टूटे पड़ रहे थे। शायर लोग मंजूर की हुई नज़्में और नग़में पढ़ रहे थे। बैंडवाले ढोल पीटे जा रहे थे और फोटोग्राफर आपा भूलकर तसवीरें उतारने में लगे हुए थे। तभी सदरे-पाकिस्तान की कड़कती हुई आवाज़ सुनाई पड़ी—"हमारी फौजें कहा हैं?"

"जी···वो मुंह धोने के लिए गई हुई हैं!" एक वज़ीर ने बताया, "अभी हाज़िर होती हैं।"

"और जनाब ज़ुल्फिकार अली भुट्टो नज़र नहीं आ रहे हैं?" सदर ने इधर-उधर देखकर पूछा।

"जी, वह अपने दांत बदलवाने गए हुए हैं···कल दोपहर ही कुछ चीनी दंदान साज आए हैं। वो उनकी बत्तीसी बदल रहे हैं!" वज़ीर ने बताया।

"बेहतर है। और हमारे हवाबाज़?"

"जी···वो ऐसा किया गया है कि कबूतरों का एक झुंड उड़ाकर उन्हें पीछा करने के लिए भेजा गया है ताकि प्रैक्टिस हो जाए!"

"बेहतर है···इन सबके आते ही मुझे खबर दी जाए!" कहकर सदर साहब ज़नानख़ाने में चले गए।

उसी वक्ति कुछ फोटोग्राफरों ने आकर शिकायत की, "जब से आपका हुक्म मिला है, तब से कोई फौजी हमारे सामने ही नहीं पड़ रहा है···मुंह धोकर लौटते ही कूच का सिलसिला शुरू हो जाएगा···हम उनकी तस्वीरें कब उतारेंगे?"

फोटोग्राफरों की यह बात सुनते ही अफसर बिगड़ गया—"आप लोग निहायत बेवकूफ हैं···अब तक क्या सो रहे थे? चाहे मुरदों को वर्दी पहनाइए, पर तस्वीरें तैयार रखिए!"

उसी दिन बर्की कस्बे के फोटोग्राफर असगर मियां ने ऐलान के मुताबिक

चार तस्वीरें खींचीं। बन्ने कलईवाले को उन्होंने वर्दी पहनाई और तीन मिनट में तसवीर तैयार करके लटका दी। गनी कबाबवाले को उन्होंने पकड़ा और खट से तसवीर खींच ली। असगर मियां खुद रिटायर्ड फौजी थे, इसलिए वर्दी मिलने में दिक्कत नहीं हुई। उनके पास एक पुरानी वर्दी पड़ी थी। पूरे दिन भर असगर मियां लोगों को बताते रहे, "किबला, हमें फ़ौज से ज्यादा तस्वीरों की ज़रूरत है···ये तसवीरें दुनिया भर के अखबारों में शाया होंगी···"

रमजानी हुज्जत करने लगा, "मियां, करांची और रावलपिंडी में बड़े-बड़े और मशहूर तसवीरवाले मौजूद हैं, आपकी तस्वीरों को कौन पूछेगा?"

"इस वक्त मुल्क के हर शख्स का फर्ज़ है कि वो वही करे, जो सदर साहब ने फरमाया है···ये वर्दी पहन लो, फिर जो तस्वीर आएगी वह तो तुम जैसे मुरदों को भी ज़िन्दा साबित कर देगी···समझे····"

"फर्ज का सवाल है तो लीजिए, पहनाइए वर्दी और उतार लीजिए तस्वीर!" रमजानी बोला।

और असगर मियां अपने कनस्तरनुमा कैमरे में मुंह डालकर फोकस करने लगे थे।

जैसे ही सदरे-पाकिस्तान की चहलकदमी की खबर कस्बे में पहुंची असगर मियां ज़िंदाबाद के नारे लगाने लगे। पूरे कस्बे में सनसनी फैल गई। अखबारों की कागज़ी तोपें दगने लगीं। कुछ धड़ाके बर्तानिया और अमरीका के अखबारों में हुए। रेडियो पाकिस्तान से शायरों के तैयारशुदा नगमे गूंजने लगे और पूरे मुल्क में ढोल बजने लगे।

दो दिन इन ढोलों और अखबारी तोपों के धूम-धड़ाकों में कुछ भी सुनाई नहीं दिया। धीरे-से जब यह खबर आई कि भारतीय फौजों ने चार जगह जवाबी हमला बोल दिया है तो अखबारी तोपों के दहानों में कुछ और बारूद भरी गई। ढोलों की आवाज़ तेज़ करने का हुक्म जारी हुआ।

हुक्म के मुताबिक़ असगर मियां अपने कस्बे में मीटिंग करने लगे। रिटायर फौजी होने की वजह से असगर मियां को रावलपिंडी के दरबार का एक ख़ास कारकुन माना जाता था। कस्बे में उनकी बड़ी इज़्ज़त थी। यह इज़्ज़त तब और बढ़ जाती थी, जब मुल्क में जंगी खबरें फैलने लगती थीं। अमरीकी हथियारों की इमदाद की खबर भी असगर मियां ही कस्बे में लाए थे। एक तरह से वे कस्बे के फील्ड मार्शल माने जाते थे।

दिन-दिन भर असगर मियां सदरे-पाकिस्तान के फरमानों का मतलब लोगों को समझाते रहते, लेकिन जब ये खबरें जोर पकड़ने लगीं कि भारतीय फौजें बराबर बढ़ती आ रही हैं, तो लोगों ने भागना शुरू कर दिया। तीन दिन बाद ही

बर्की कस्बा भारतीय फौजों ने सर कर लिया और वे इच्छोगिल नहर के किनारे पहुंच गईं।

इच्छोगिल नहर के किनारे जमकर लड़ाई हुई। उधर अख़बारनवीसों ने कुछ और बारूद अपनी तोपों में भरी। शायरों ने कुछ और तराने गाए, बैंडवालों ने कुछ और ढोल बजाए।

ढोलों की खालें फटने लगीं तो चीनियों ने खालों का इंतज़ाम करने के लिए भारत सरकार को फौरन एक ख़त लिखा कि जो आठ सौ चीनी भेड़ें भारत के सिपाहियों ने पकड़ ली हैं, उन्हें फौरन वापस किया जाए। ख़त की एक कापी रावलपिंडी पहुंची तो ढोल वालों को करार आया।

भारतीय फौजों के हमले से जो पाकिस्तानी फौज भागी थी, वह बर्की से होती हुई लौटी थी। असगर मियां ने बहुत हायतोबा की, पर भागती फ़ौज ने कान न दिया। आखिर वे बचे हुए आठ लोगों के साथ दुकान के पासवाली सराय में जा छिपे थे और लगातार अपने आठों साथियों के सामने तकरीरें किए जा रहे थे।

इच्छोगिल नहर के किनारे पाकिस्तान ने सबसे पहले ढोलवालों को आगे भेजा। उनके पीछे पैटन टैंक साहब आए और फिर अपनी नामी बख्तरबंद फौज की एक डिवीज़न तथा पैदल फ़ौज का एक ब्रिगेड भी उसने झोंक दिया।

जिस वक्त बख़्तरबंद फौज लड़ाई के मैदान में झोंकी गई उस वक्त शायर लोग रेडियो पाकिस्तान से फतह के नगमे सुना रहे थे और सराय की कोठरी में सांस रोककर बैठे हुए असगर मियां दुआं मांग रहे थे। खालों की कमी की वजह से ढोलों की आवाज़ कुछ मद्धिम पड़ गई थी।

इच्छोगिल नहर के किनारे घमासान लड़ाई हो रही थी। गोलों और बारूद से आसमान लाल पड़ गया था। चारों तरफ चीख़ें, मारकाट धमाके और गोलों-बंदूकों की गूंजती हुई आवाज़ें थीं। धुएं और धूल के बादल थे। कुचली हुई फ़सलें और कई मील के घेरे में पड़ी लाशें थीं। कराहते हुए घायल और दम तोड़ते सिपाही थे।

बर्की कस्बे के कच्चे घरों की दीवारें उस गोलाबारी की आग में बुझे हुए अंगारों की तरह चमक रही थीं। खपरैलों से धुएं के बादल उठ रहे थे।

सुबह हुई तो चारों तरफ सन्नाटा था। नहर का किनारा लाशों से पटा हुआ था। टैंकों, मशीनगनों और गोलों के टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। शायरों के नगमे थम गए थे और फटे हुए ढोलों को फिर से मढ़ा जा रहा था। अखबारों की तोपों में ज़रूर कुछ जोश आ गया था और वे दनादन गोले उगल रही थी।

बर्तानिया और अमरीका के अख़बारनवीसों को फौरन बुलाया गया और उनसे मदद मांगी गई। सभी दोस्तों ने साथ दिया।

इधर इच्छोगिल नहर और बर्की कस्बे में सन्नाटा छाया हुआ था। बेकार हुए टैंकों की बगल में एक जीप के टुकड़े बिखरे हुए थे, उसमें चार फ़ौजियों की लाशें पड़ी थीं।

कुछ देर बाद पाकिस्तानी सिपाही ट्रकें और जीपें लेकर आए और ख़ास-ख़ास मुरदों को उठा ले गए लेकिन इस हड़बड़ी में ब्रिगेडियर को पहचाना, तो वे अदब से उनकी लाश उठाकर अपनी तरफ ले आए।

पाकिस्तानी ब्रिगेडियर की लाश जब भारतीय फील्ड कमांडर के सामने लाई गई तो सभी ने एक मिनट ख़ामोश खड़े होकर उसे सम्मान प्रदान किया।

"उन्हें फ़ौजी सम्मान के साथ दफनाया जाए।" फील्ड कमांडर ने पास खड़े कप्तान से कहा और वह कई क्षणों तक पाकिस्तानी ब्रिगेडियर की लाश को देखता रहा। फिर उसने अपनी टोपी उतारकर एक बार फिर उसे सम्मान प्रदान किया और बोला, "मौलवी साहब को बुलवाकर इन्हें दफनाने का इंतज़ाम कर दिया जाए!"

"एक फोटोग्राफर इनका फोटो ले-ले तो!"

"क्या करेंगे?"

"इनकी—फैमिली को भिजवा देंगे।"

"ज़रूर⋯ ज़रूर⋯"

कप्तान ने फोटोग्राफर की तलाश की। उसने पेट्रोल पार्टी के जवानों को बुलाकर पूछताछ की तो पता चला कि बर्की कस्बे में एक फोटोग्राफर है।

कस्बा लगभग वीरान पड़ा था। कच्चे घरों के ढेर इधर-उधर बिखरे हुए थे। गोलियों में भगदड़ के वक्त कुचले हुए लोगों की लावारिस लाशें पड़ी थीं। मलबे के ढेरों के नीचे भी लाशें दबी थीं⋯कुछेक कुत्ते सूंघते हुए फिर रहे थे।

भारतीय सिपाहियों को देखते ही क़स्बे के बचे लोग सराय के कमरों में दुबक गए थे। सराय के बाहर ही रिटायर्ड हवलदार मुहम्मद असगर ख़ां सरगोधावाले की फोटोग्राफरी की दुकान का बोर्ड लटक रहा था।

पेट्रोल टुकड़ी के नायक ने आवाज़ दी—"सारे लोग कोठरियों से निकल आएं⋯अगर कोई हथियार पास हो तो उसे पहले बाहर फेंक दें! किसी को जान का कोई नुकसान नहीं होगा।"

एक मिनट बाद ही एक निहायत बूढ़ा आदमी हाथ उठाए हुए कोठरी से बाहर आया⋯उसके पीछे सात आदमी भी उसी तरह निकल आए।

तीन जवानों ने कोठरियों को देख डाला। सारे ढोल फटे हुए थे।

"तुम लोगों में से कोई तस्वीर खींचनेवाला है?" नायक ने पूछा। जब तक असगर मियां आंख के इशारे से अपने साथियों का मान करें जब तक एक ने बता दिया था—"लफटैन साब... यह है फोटोगिराफर... इन्हीं की अकेली दुकान इस कस्बे में है..."

असगर मियां ने घबराते हुए कहा—"अजी साहब, वो तो बस कहने भर को है... तस्वीर बनाना अपने को नहीं आता..."

"अरे मियां... तुम तो तमाम हुक्कामों की तस्वीरें उतार चुके हो। रावलपिंडी, स्यालकोट में तुम्हारी उतारी तस्वीरें बिकती हैं और अब..." साथियों में से एक बातूनी बोल पड़ा, "लफटैन साब, असगर मियां फ़ौज में रह चुके हैं... इस बुढ़ापे में अब तसवीरें उतारने का काम करते हैं..."

असग़र मियां के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। आख़िर जब समझा-बुझाकर, डरा-धमकाकर नायक ने उन्हें तैयार किया तो वे बोले, "अब देख लेता हूं... कैमरा-वैमरा सही सलामत है या नहीं..."

और कुछ देर में असगर मियां अपने किस्से सुनाते हुए जीप में बैठकर चल पड़े। उन्होंने अपने बाक्स कैमरे का तिकोना स्टैंड, लोशन की शीशियां, धोने की प्लेटें वगैरह सब ले लीं और बड़ी मौज में अपने किस्से सुनाते जा रहे थे।

"पाकिस्तानी जवान भी ख़ासा लड़ाका है!" एक जवान ने कहा तो असगर मियां खुश हुए, "बड़ी दिलेर कौम है हमारी..." फिर वे ख़ुद ही कुछ अचकचा गए और धीरे-से बुदबुदाए, "हिन्दुस्तानी भी बहुत दिलेर हैं... अपनी तो आधी ज़िंदगी ही फ़ौज में गुज़री... फील्ड मार्शल सदर अयूब ख़ां साहब जिस वक्त आला कमान में थे, उस वक्त मैं रेगुलर फौज में था। हमारी कौम की रगों में फौजी जोश भर दिया। सदरे अयूब ने और हमारी फौजों को अमरीकी हथियारों से लैस कर दिया। जंग तो हमारे लिए..." वे अपनी रौ में कहते जा रहे थे।

कुछ देर बाद जीप कमांड पोस्ट पर जाकर रुक गई।

ब्रिगेडियर की लाश को असगर मियां के कैमरे की सहूलियत के लिए एक मेज़ पर टिका दिया गया था। लाश कुछ अकड़ गई थी, इसलिए उसे ठीक से रखा नहीं जा सका था। फिर भी उनका चेहरा और कंधों का हिस्सा ठीक आ रहा था। कोहनी के नीचे उड़ी हुई बाईं बांह तक तसवीर न उतारी जाए, यह असगर मियां को बता दिया गया था।

"हम नहीं चाहते कि इनके घरवाले यह टूटी हुई बांह देखें... उन्हें बहुत

तकलीफ होगी!" कप्तान ने कहा। उसने अपने रूमाल से ब्रिगेडियर के नथुनों के पास चिपके खून के पपोटों को साफ किया और उनकी नीचे झुकी हुई मूंछों को ऊपर कर दिया।

असगर मियां तहमद से अपना पसीना पोंछकर एक किनारे आ गए थे। कनस्तर-सा वह कैमरा लोड हो चुका था, लैंस सैट हो गया था और अब वे मौका-मुआयना कर रहे थे।

आगे बढ़कर उन्होंने ब्रिगेडियर की वर्दी का कालर ज़रा-सा एक तरफ खींच दिया। बटनों की पट्टी को सीधा किया और हथेली को दूरबीन-सी बनाकर एक बार उस लाश को फिर देखा। रोशनी का जायज़ा लिया और हाथ झाड़कर तैयार हो गए।

कैमरे का लंबा क्लिकर उन्होंने बाएं हाथ में पकड़ लिया था और उनका अंगूठा क्लिक करने के लिए तैयार था। एक क्षण के लिए उन्होंने कैमरे को देखा और बोले—"रेडी··· रेडी···स्माइल प्लीज···फिर शुतुरमुर्ग की तरह गरदन छिपाकर व्यस्त हो गए। इधर रावलपिंडी में फिर ढोल बजने लगे और शायर नग़मे सुनाने लगे।

●●●

मुद्रक : लक्ष्मी प्रिन्टइण्डिया, शाहदरा, दिल्ली-32

FIC KAMLESHWAR In Hindi
Kamleshwar, 1932-2007.
Jorja Pancama ki naka

HILLSBOROUGH PUBLIC LIBRARY
Hillsboro Municipal Complex
379 South Branch Rd.
Hillsborough, NJ 08844

SOMERSET COUNTY LIBRARY SYSTEM
3 3665 02279 9424

"ये कहानियां मेरे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं,
क्योंकि इनके सहारे ही मैंने
पहली बार महानगर की उलझी हुई
ज़िंदगी के छोर सुलझाए थे।
इन कहानियों ने मुझे एक सक्रिय दृष्टि दी है और
बेहतर कहानियों की पीठिका भी तैयार की है।
इसीलिए मैं इन कहानियों का शुक्रगुज़ार हूं।"

—कमलेश्वर



राजपाल

ISBN 81-7028-26
9 788170 2826

P8-BQQ-342